अमिता

'अमिता' हंसराज 'रहबर' का नया उपन्यास है। इसमें एक ऐसी आधुनिक महिला की कहानी है जो प्रेम एक से करती है, पर विवाह दूसरे से। और यह सब कुछ होता है सोच-समझकर ही···इस उपन्यास में नारी-मन की उलझनों का, उसकी महत्वाकांक्षाओं और विवशताओं का जैसा मार्मिक चित्रण हुआ है वह पढ़ते ही बनता है। 'रहबर' जी हिंदी के एक सशक्त कलाकार हैं। आप उर्दू से हिंदी में आए। 'संकल्प', 'आंके-बांके' और 'उन्माद' आपके प्रमुख उपन्यास हैं। शैली में नयापन और चिंतन में ताजगी आपकी कलागत विशेषता है।

हंसराज 'रहबर'

अमिता

क्या समय को सेकंड, मिनट, महीनों आर्सालान्म विभा जित करना सम्भव है ?

अमिता कमरे में अकेली बैठी सोच रही है। यह प्रश्न उसके मन में बार-बार उठ रहा है पर वह किसी निर्णय पर पहुंचने में असमर्थ है। उसे आशंकाओं ने आ घेरा है। ये आशंकाएं उसके अपने अनुभव से उत्पन्न हुई हैं। इसलिए उन्हें झुठलाना सम्भव नहीं है और वे उसकी आत्मा को कोंच रही हैं।

वरना इससे पहले उसका यह दृढ़ विश्वास था कि घंटे का पेंडुलम महज़ नज़र का धोखा है, वह समय निर्धारित नहीं करता क्योंकि समय का सम्बन्ध अन्तरिक्ष से नहीं अभ्यंतर से है। मनुष्य समय में नहीं समय मनुष्य में रहता है। वह तो एक विशाल नदी की प्रबल धारा है जो निरन्तर गति से बहती आई है, बह रही है और बहती रहेगी। उसका कोई ओर-छोर, कोई सीमा और कोई अंत नहीं। उसे जून-जुलाई, फागुन-भादों मास में और संवतों की पुड़ियाओं में किसने बांधा है ? समय को विभाजित करने

—अंशों में बांटने का मतलब है, अमिता के अपने अस्ति
को—सम्पूर्ण वास्तविकता को विभाजित करना;
बचपन, जवानी और बुढ़ापे में अथवा बेटी, बीवी अ
मां के अलग-अलग खंडों में बांटना। मगर उसे अप
अस्तित्व को—सम्पूर्ण वास्तविकता को यों खंडित कर
स्वीकार नहीं है। वह जन्म से मरण तक एक इकाई है—
सम्पूर्ण इकाई; नारी का विकासशील गतिमान जीवन
जिसे वह हवा की तरह स्वच्छन्द और स्वाधीन रहकर
बिताने का निश्चय कर चुकी है। अपनी स्वाधीनता उसे
किसी भी वस्तु से कहीं अधिक प्रिय है और इस स्वाधीनता
को उसने मन और शरीर के संघर्ष द्वारा सार्थक बनाने का
प्रयत्न किया है। अपने को भौतिक वातावरण के सामा-
जिक और मानसिक बन्धनों से मुक्त करने के लिए ही
उसने घर से भाग जाने का अन्तिम कदम उठाया।

मगर—मगर अब छः महीने बाद फिर उसी घर में
लौट आई है, लौट आने पर विवश हुई है, अपने उसी
कमरे में बैठी है, जिसे उसने एक बार हमेशा के लिए छोड़
दिया था। यही कारण है कि उसके मन को आशंकाओं ने
आ घेरा है और वह किसी भी निर्णय पर पहुंचने में
असमर्थ है।

अन्तर्द्वन्द्व के विवर्त से उभरकर अमिता एक नज़र
अपने पर और एक कमरे पर डालती है। हरएक चीज़
अपने स्थान पर ज्यों की त्यों पड़ी है। टाइम-पीस, अगरचे
चाबी न भरे जाने के कारण बन्द है, कार्निस पर पड़ा है,

सामने कलेंडर लटक रहा है और वह खुद एक विवश और लाचार वंदिनी की नाईं भौतिक वातावरण की चार-दीवारी में वंद है। छः महीने पहले भी यह वातावरण वैसा ही था जैसा अब है, हरएक चीज़ यथावत् है और कुछ भी तो नहीं वदला। मगर उसके भीतर वहुत कुछ वदल चुका है। उसका अस्तित्व एक सम्पूर्ण इकाई न होकर टुकड़ों में खंडित है। उसका दृढ़ विश्वास और अमूर्त धारणाएं धूल में मिल चुकी हैं और कोई उसके भीतर वैठा कह रहा है, 'देख लिया, शरीर ही वास्तविक जीवन है।'

'नहीं, नहीं!'

'क्यों नहीं ? शरीर भी भौतिक, मन भी भौतिक। यह वातावरण भौतिक, दीवारें भौतिक। भौतिक, भौतिक, सव कुछ भौतिक ?'

अमिता विवश है। उसका दृढ़ विश्वास और अमूर्त धारणाएं धूल में मिल चुकी है। वह कुछ भी सोचना नहीं चाहती फिर भी सोचने पर मजवूर है। जीवन की ठोस घटनाएं और उन घटनाओं से सम्वन्धित तिथियां मस्तिष्क में उभर रही है। एक तिथि छ: महीने पहले की है जब वह भागकर गई। और दूसरी तिथि वह है जव वह लौटने पर विवश हुई। फिर इन दोनों तिथियों से ऊपर एक तीसरी तिथि—कहीं अधिक स्पष्ट और उज्ज्वल, १४ फरवरी, सन् १६८४ की है जव उसका व्याह हुआ था।

पर असल मन और शरीर के सघर्ष की कहानी, जिसकी वह नायिका है, यहीं से, इसी व्याह से शुरू होती है।

ब्याह की याद आते ही खत की याद आती है और अमिता चौंककर उठ खड़ी होती है।

सोफे के दाईं ओर की अलमारी खोलकर वह एक डिब्बा निकालती है। इस डिब्बे में वह खत ज्यों का त्यों पड़ा है जैसा कि उसने वहां रख दिया था। जब यह खत मिला था, अमिता ने पते की लिखावट ही से पहचान लिया था कि यह गोपाल का पत्र है।

वह पत्र को एक क्षण देखती है और फिर जिस उत्सुकता से पहले दिन पढ़ा था, उसी उत्सुकता से अब फिर पढ़ना शुरू करती है। लिखा है :

प्रिय अमिता,

मैं तुम्हें तुम्हारे शुभ विवाह पर बधाई देता हूं। मुझे इसका न कोई खेद और दुःख है और न तुमसे कोई शिकायत, क्योंकि इस ब्याह से तुम्हें जो भौतिक साधन प्राप्त हुए हैं, शायद मैं कभी न जुटा पाता। इसलिए मैं समझता हूं कि तुमने मेरी बजाय एक दूसरे व्यक्ति से ब्याह करके नारी की व्यावहारिक बुद्धि का परिचय दिया है। मैंने भी रात-भर जागकर इस समस्या पर व्यावहारिक बुद्धि से विचार किया है। वस्तुस्थिति को भली भांति समझकर ही मैं बधाई का यह पत्र लिख रहा हूं और तुम्हारे मन का भ्रम दूर कर देना चाहता हूं।

तुमने मुझे आश्वासन दिया है कि ब्याह के बाद भी मन पर मेरा अधिकार रहेगा और तुम मुझे आत्मा की

सम्पूर्ण शक्ति से आजीवन प्यार करती रहोगी। तुम्हारी धारणा यह है कि विवाह-बन्धन में बंधनेवाले दो प्राणी व्याह के बाद स्त्री और पुरुष न रहकर—पत्नी और पति बन जाते हैं। वे एक-दूसरे के शरीर पर अपना अधिकार समझते हैं इसलिए उनमें प्रेम का उदय सम्भव नहीं, क्योंकि प्रेम शरीर की नहीं मन की वस्तु है। यों ब्याह एक सामाजिक बन्धन है जो प्रेम को नकारता है। पति-पत्नी साथ रहने पर मजबूर है और समाज के पास इस मजबूरी का कोई इलाज नही। अतएव पति-पत्नी का नाता, एक सामाजिक नाता है। समाज के दिखावे के लिए तुम पति को पति मानोगी; लेकिन प्रेम मुझसे करोगी, क्योंकि शरीर पति को सौंप देने के बाद भी मन पर मेरा अधिकार बराबर बना रहेगा। तुम अपना मन जिसे भी चाहो देने में स्वतन्त्र हो, इसमें समाज का कोई दखल नही।

बुरा न लगे तो कहूं कि मैं तुम्हारी इस बात से सह-मत नहीं। कारण यह कि मैं मन को भी शरीर ही का एक भौतिक अंग मानता हूं। इसलिए मानव-अस्तित्व को भौतिक और मानसिक दो भागों में विभाजित करना भ्रान्तिमात्र है। यह कैसे सम्भव है कि कोई नारी शरीर उस व्यक्ति को सौंप दे, जिसे वह अपना पति मानती है और मन से उस व्यक्ति की बनी रहे जिसे वह प्रेम करती है। इस विभाजन से इस समय चाहे तुम्हें कुछ सुख और सन्तोष प्राप्त हो, तो हो; लेकिन अन्त में इससे कोई लाभ नहीं होगा, क्योंकि यह एक आत्म-प्रवंचना और . . -

मात्र है। मैं एक भावुक व्यक्ति अवश्य हूं; लेकिन साथ ही एक वैज्ञानिक भी हूं। इसलिए मैं विडम्बना का यह भार नहीं ढो सकता।

भ्रान्ति कैसी भी हो, अन्त में वह मनुष्य को विमूढ़ और दुःखी वनाती है। शरीर और मन को अलग-अलग समझना भी एक भ्रान्ति है, जिसका आधार अज्ञान तथा स्वार्थ है। और यह भी एक भ्रान्ति है कि व्याह के वाद पति और पत्नी एक सामाजिक वन्धन में वंध जाते हैं, इसलिए उनमें प्रेम सम्भव नहीं है। निस्सन्देह ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं कि व्याह से पहले दो व्यक्ति एक-दूसरे से प्रेम करते थे; लेकिन व्याह के वाद उनका यह प्रेम विकसित ढ़ होने के वजाय शिथिल और क्षीण होता गया सम्वन्ध-विच्छेद में हुआ। ऐसे उदाहरण यूरोप २ क्षत' और 'सभ्य' समाज में कहीं अधिक मिलते हैं, र दरअसल वहीं से यह भ्रान्ति फैली है। व्याह अगर ५ व्याह है तो स्त्री और पुरुष दोनों एक-दूसरे के मानसिक विकास में सहायक वनते हैं। यह व्याह का एक-मात्र उद्देश्य है। वर्तमान समाज में व्याह का आधार धन, सम्पत्ति, कुल और ऐसी ही वातें हैं या फिर उन्माद अथवा आवेश है जिसे भूल से प्रेम समझ लिया जाता है। उन्माद भौतिक लाभ-हानि के आगे अधिक देर नहीं टिक पाता। जीवन की कठोर और भीषण परिस्थितियों की आंच में वह सूरज के आगे कोहरे की तरह पिघल जाता है। लेकिन प्रेम की जड़ें गहरी हैं। वह कली की भांति

व्यक्तित्व के भीतर से उगता है। प्रेम करनेवाले दो प्राणियों के अधिक निकट आने अर्थात् विवाह-बन्धन में बंध जाने के बाद वह कम होने के बजाय और बढ़ता है। उसमें अधिकार, शरीर और मन के विभाजन का सवाल ही नही उठता। पूर्ण समर्पण का नाम ही प्रेम है।

हां, शरीर और मन के सम्बन्ध को समझने के लिए प्रकृति का एक उदाहरण याद आया। फूल देखने को कोमल और सूक्ष्म है, उसमे रंग और सुगन्ध भी है; लेकिन जिस पौधे पर वह उगता है, जिसमे काटे, पत्ते और डंठल भी हैं, फूल भी उसीका एक अविच्छेद्य अग है। उसे भी धरती में निहित जड़ ही से जीवन मिलता है। यानी फूल पौधे के भौतिक अस्तित्व का सूक्ष्म रूप है। उसकी सुषमा, सुगन्ध और कोमलता पौधे पर निर्भर है और धरती में निहित जड से, हवा और प्रकाश से प्राप्त होती है। जड़ सूख जाने से पत्ते और टहनिया ही नही, फूल भी मुरझा जाता है।

शरीर और मन में भी ठीक यही सम्बन्ध है। तुम्हारी नई परिस्थिति का—विवाहित जीवन का तकाजा यही है कि तुम शरीर और मन को अलग-अलग समझने की भ्रान्ति से अपने को मुक्त कर लो और जिस व्यक्ति को तुमने शरीर सौंपा है उसे मन भी सौंप दो। प्रेम चूंकि सम्पूर्ण समर्पण चाहता है; इसलिए तुम सम्पूर्ण समर्पण करके ही पति से प्रतिदान में सम्पूर्ण समर्पण पा सकोगी, अन्यथा नहीं। समझ लो, हमारा प्रेम प्रेम नहीं,

था। अब इस उन्माद को आगे बढ़ाना, भ्रम का रूप देना तुम्हारे या मेरे किसीके लिए भी हितकर नहीं है। दुनिया बड़ी विशाल है। इसमें कितने ही लोग एक-दूसरे के सम्पर्क में आते हैं और चले जाते हैं। मैं भी यही समझता हूं कि संयोग से मेरे जीवन में तुम आईं और चली गई। तुम भी यही समझो कि गोपाल नाम का एक व्यक्ति संयोग से तुम्हारे जीवन में आया और चला गया। इससे अधिक कुछ नहीं। अच्छा, बाई! बाई!

—तुम्हारा
गोपाल

अमिता चुप बैठी सोच रही है। उसे पत्र के बाद की एक-एक घटना याद आ रही है। और ब्याह से अब तक की सारी कहानी मस्तिष्क में उभर आई है।...

…विवाह के तीसरे दिन यह पत्र प्राप्त हुआ था।

अमिता पढ़कर गुमसुम रह गई थी। गोपाल के निष्ठुर तर्क ने कठोर आघात किया था। पत्र उसके हाथ में था और वह एक निष्प्राण मूर्ति की तरह अचल और स्थिर बैठी थी। कई क्षण बीत गए और वह इसी तरह गुमसुम बैठी रही। धीरे-धीरे चेतना जागी। उसने एक नजर पत्र पर डाली और अर्धचेतन अवस्था ही में उसे फिर से पढ़ना शुरू किया—'मैं तुम्हें तुम्हारे शुभ विवाह पर बधाई देता हूं। मुझे इसका न कोई खेद और दुख है और न तुमसे कोई शिकायत है क्योंकि इस ब्याह से तुम्हें जो भौतिक साधन प्राप्त हुए हैं…'

अमिता के भीतर कोई शै टूट-सी गई और उसने आंखें फैलाकर इधर-उधर देखा। मुंह में एक कड़ुवाहट सी भर आई थी जो निगली नहीं जा रही थी। और उसे थूक देने के सिवा कोई चारा नहीं था।

'भौतिक साधन और उन्माद।' वह पत्र को तिहाते हुए बड़बड़ाई और बेचैनी की हालत में उठकर टहलने लगी।

गोपाल ने उसपर यह व्यर्थ का लांछन था।

'चित्त, हृदय, परिमाण-विशेष, चालीस सेर का तौल......'

अमिता रुकी और 'चालीस सेर का तौल' शब्द दोहराकर उन्मत्त-सी हंसने लगी।

वह अपने साथ जो चन्द किताबें लाई थी उनमें एक हिन्दी का यह 'शब्दकोश' भी था। और इसका इतिहास यह था कि अमिता जब कालेज के दूसरे वर्ष में पढ़ती थी तो कविता की वार्षिक प्रतियोगिता में वह प्रथम आई थी और यह पुस्तक उसे पुरस्कार के रूप में मिली थी। इसलिए इस पुस्तक से उसका विशेष अनुराग था। वह $\frac{२०\times३०}{८}$ के बड़े साइज़ पर छपी हुई थी। गत्ते की मज़बूत जिल्द और उसपर नीले रंग का पुश्ता। पलटते ही गत्ते के भीतरी भाग पर एक चिट चिपकी हुई थी, जिसपर अमिता का नाम और 'कविता-प्रतियोगिता में प्रथम पुरस्कार' शब्द लिखे हुए थे। वह जाने कितनी मर्तबा हर्ष और गर्व से इस चिट को देख चुकी थी और जब भी देखती थी, उस समय का दृश्य मस्तिष्क में उभर आता था, जिसमें उसने अपनी यह कविता पढ़ी थी और श्रोताओं ने करतल-ध्वनि से उसका स्वागत किया था। अब भी यह दृश्य उभर आया और श्रोताओं की करतल-ध्वनि सुनाई पड़ी जिससे मन कुछ शान्त और प्रकृतिस्थ हुआ लेकिन 'चालीस सेर का तौल' शब्द दोहराकर वह एक बार फिर हंसी।

लेकिन इस हंसी का अर्थ और अंदाज पहली हंसी

भिन्न था।

दरअसल अमिता का अभिप्राय 'मन' शब्द का अर्थ देखना नहीं, मन और शरीर के सम्बन्ध को समझना था। कोशकार ने साधारण चालू अर्थ तो लिख दिए थे; मगर इस पक्ष पर तनिक भी प्रकाश नही डाला था। प्रकाश न डालना उसकी भूल नहीं थी, क्योंकि उसने कोई दार्शनिक ग्रंथ नही लिखा था, एक शब्द कोश का सम्पादन-भर किया था, लेकिन अमिता को यह बात जची नही, उसे जिंदगी में पहली बार कोशकार के अल्प और सीमित ज्ञान पर तरस आया और उसकी इस हसी का कारण भी शायद यही था।

इसी समय अमिता की ननद कल्याण ने कमरे मे प्रवेश किया। वह मंझोले कद और भरे शरीर की महिला थी और उम्र अमिता से दो-तीन साल ही बडी होगी। उसने भाभी को किताब पर झुकी देखकर पूछा :

'यह क्या पढ़ रही हो?'

अमिता ने सिर ऊपर उठाकर एकटक ननद की ओर देखा और फिर मुस्कराते हुए उत्तर दिया, 'मन का अर्थ खोज रही हूं!'

'अच्छा, मेरी भाभी इतनी भोली है कि उसे मन का भी अर्थ नही आता।' कल्याण ने परिहास के स्वर में कहा।

'मैं बेचारी किस खेत की मूली हू, मन का अर्थ तो इस कोशकार को भी नही आता।' अमिता ने उत्तर दिया।

'तो मैं बताऊ?'

'तुम !' अमिता का हाथ ठुड्डी पर चला गया और वह कल्याण के वजाय छत की तरफ देखने लगी।

'क्यों, मैं नहीं वता सकती ?'

कल्याण सीधे सरल स्वभाव से मुस्करा रही थी। अमिता को अपने पर लज्जा आई और वह वोली, 'अच्छा वताओ।'

'चित्त, हृदय...'

'लेकिन यहां तो लिखा है—चालीस सेर का तौल !' अमिता ने उसे वीच ही में टोक दिया और शब्दको को दोनों हाथों में थामकर उसे हिलाते हुए कहा, 'ऐसी ऐसी वीस-पचीस पुस्तकें हों तव कहीं एक मन वने।' अ वह खिलखिलाकर हंस पड़ी।

कल्याण इस हंसी की पृष्ठभूमि से परिचित नहीं था। इसलिए वह अमिता का मनोगत भाव क्या समझती।

'मन का अर्थ चालीस सेर का तौल भी ठीक है।' उसने कोशकार का समर्थन किया।

'मेरा वज़न तो चालीस सेर नहीं, तुम्हारा शाय अधिक भी हो।'

कल्याण ने एक नज़र अमिता के पतले-दुवले कोम गात पर और एक अपने भरे हुए शरीर पर डाली अ फिर इसे भाभी का मीठा व्यंग्य समझकर वोली—

'भाभी, तुम जितनी खुद कोमल हो तुम्हारा मन उतना ही कोमल है।'

'मन, हृदय...चित्त और चालीस सेर का तौल

अमिता ने प्रत्येक शब्द को अलग-अलग करके कहा और फिर हंसने लगी।

'मालूम होता है तुम्हें आज हंसी के दौरे पड़ रहे हैं।' कल्याण विमूढ़-सी उसकी ओर देखते हुए बोली और तनिक रुककर कहा, 'अच्छा, अब जल्दी से तैयार हो जाओ।'

'तैयार!'

'हां, सिनेमा नहीं जाना। भैया इन्तजार कर रहे होंगे।'

फिल्म में अमिता का मन नहीं लगा। वह सन और गोपाल ही के बारे में सोच रही थी और जब घर लौटकर सोने के लिए लेटी तब भी इसी घटना से परेशान थी।

'अमिता! रात तुम सोते-सोते बड़बड़ा रही थीं।' सुबह उसके पति योगराज ने कहा।

'अच्छा!' अमिता ने विस्मय व्यक्त किया।

'हां! तुमने 'चालीस सेर का तोल' कहा और हं पड़ी। मैंने टोका तो तुम चुप हो गईं। बोलीं नहीं।'

अमिता अब भी नहीं बोली, चुप रही। उसने भीतर की प्रतिक्रिया को चेहरे पर व्यक्त नहीं होने सोते में जो बाल बिखर गए थे, उन्हें संवारा और जूड़ा बांधते हुए पति से पूछा—

'मन के बारे में तुम्हारी क्या राय है?'

'मन!' योगराज चौंका।

'मेरा मतलब है शरीर और मन के सम्बन्ध के बारे में आप क्या सोचते हैं ?' अमिता ने प्रश्न की व्याख्या की।

इस व्याख्या के बावजूद बात योगराज की समझ में नहीं आई। उसने तकिया उठाकर योंही घुटनों पर रख लिया और फिर पत्नी की ओर देखकर निरीह भाव से मुस्कराया।

'शरीर और मन का सम्बन्ध, जो भी हो, वह कवि जानें,' योगराज बोला, 'हम कैमिस्ट इतना जानते हैं कि शरीर के रोगों की तरह मन के भी कुछ रोग होते हैं और हमारे पास इन रोगों की दवाइयां मौजूद हैं जैसे कोरामीन, राड्रेनलिन, पेट्रिड······'

'और इन दवाइयों से रोग दूर हो जाता है ?' अमिता ने उसे टोका।

अमिता के स्वर में व्यंग्य और विद्रूप था, योगराज का ध्यान उस तरफ नहीं गया। वह दुकान पर गाहक के साथ जिस ढंग से बात करने का आदी हो गया था, बिना सोचे उसी ढंग से उत्तर दिया—

'हां, क्यों नहीं ? दवाई से लाभ तो ज़रूर होता है।'

'तो तुम मुझे कौन-सी दवाई लाकर दोगे ?'

'जो तुम चाहो,' योगराज ने चट उत्तर दिया। और एक क्षण रुककर पूछा, 'लेकिन क्या तुम्हें कोई मन का रोग है ?'

'मन का रोग !' अमिता ने दोहराया और फिर आगे

कहा, 'अभी तो नहीं शायद आइन्दा लग जाए।'

अमिता मुस्कराई और इस बार योगराज भी मुस्कराया।

'वैसे इस बड़बड़ाने का भी मन के रोग से सम्बन्ध हो सकता है। मैं समझता हूं कि किसी अच्छे डाक्टर से मशविरा ले लेना ठीक होगा।'

'दवा और डाक्टर।' अमिता ने कहा और उसकी मुखमुद्रा गम्भीर हो गई।

योगराज ने पत्नी का मूड देखा तो आगे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। वह चुपचाप उठा और हमेशा की तरह अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गया।···

···योगराज अपने माता-पिता का इकलौता बेटा और कल्याण उसकी इकलौती बहिन थी। उसने मजंग में एक कोठी का आधा हिस्सा किराये पर ले रखा था, जिसमें बहिन-भाई इकट्ठे रहते थे। कल्याण की शादी हो चुकी थी, लेकिन उसके इंजीनियर पति ने उसे अपने साथ रखने से इनकार कर दिया था, इसलिए वह मायके आकर भाई के साथ रहने लगी थी।

बहिन घर संभालती और भाई अपना कारोबार देखता था। योगराज का नीला गुम्बज पर एक बहुत बड़ा मेडिकल स्टोर था, जो खूब चलता था। उसका कट-खयाना.

'मेरा मतलब है शरीर और मन के सम्बन्ध के बारे में आप क्या सोचते हैं ?' अमिता ने प्रश्न की व्याख्या की।

इस व्याख्या के बावजूद बात योगराज की समझ में नहीं आई। उसने तकिया उठाकर योंही घुटनों पर रख लिया और फिर पत्नी की ओर देखकर निरीह भाव से मुस्कराया।

'शरीर और मन का सम्बन्ध, जो भी हो, वह कवि जानें,' योगराज बोला, 'हम कैमिस्ट इतना जानते हैं कि शरीर के रोगों की तरह मन के भी कुछ रोग होते हैं और हमारे पास इन रोगों की दवाइयां मौजूद हैं जैसे कोरामीन, राड्रेनलिन, पेट्रिड······'

'और इन दवाइयों से रोग दूर हो जाता है ?' अमिता ने उसे टोका।

अमिता के स्वर में व्यंग्य और विद्रूप था, योगराज का ध्यान उस तरफ नहीं गया। वह दुकान पर गाहक के साथ जिस ढंग से बात करने का आदी हो गया था, बिना सोचे उसी ढंग से उत्तर दिया—

'हां, क्यों नहीं ? दवाई से लाभ तो ज़रूर होता है।'

'तो तुम मुझे कौन-सी दवाई लाकर दोगे ?'

'जो तुम चाहो,' योगराज ने चट उत्तर दिया। और एक क्षण रुककर पूछा, 'लेकिन क्या तुम्हें कोई मन का रोग है ?'

'मन का रोग !' अमिता ने दोहराया और फिर आगे

कहा, 'अभी तो नहीं शायद आइन्दा लग जाए।'

अमिता मुस्कराई और इस बार योगराज भी मुस्कराया।

'वैसे इस बडबड़ाने का भी मन के रोग से सम्बन्ध हो सकता है। मैं समझता हूं कि किसी अच्छे डाक्टर से मशविरा ले लेना ठीक होगा।'

'दवा और डाक्टर।' अमिता ने कहा और उसकी मुखमुद्रा गम्भीर हो गई।

योगराज ने पत्नी का मूड देखा तो आगे कुछ कहने की हिम्मत नहीं हुई। वह चुपचाप उठा और हमेशा की तरह अपनी दिनचर्या में व्यस्त हो गया।…

…योगराज अपने माता-पिता का इकलौता बेटा और कल्याण उसकी इकलौती बहिन थी। उसने मजंग में एक कोठी का आधा हिस्सा किराये पर ले रखा था, जिसमें बहिन-भाई इकट्ठे रहते थे। कल्याण की शादी हो चुकी थी, लेकिन उसके इंजीनियर पति ने उसे अपने साथ रखने से इनकार कर दिया था, इसलिए वह मायके आकर भाई के साथ रहने लगी थी।

बहिन घर संभालती और भाई अपना कारोबार देखता था। योगराज का नीला गुम्बज पर एक बहुत बड़ा मेडिकल स्टोर था, जो खूब चलता था। उसका कद्र [illegible]ता,

शरीर सुडौल, चेहरा गोल-मटोल और गोरा था, लेकिन एक कमर्शल मुस्कराहट के अतिरिक्त, जो उसके होंठों पर हमेशा वनी रहती थी, उसका समूचा भाव प्रायः नीरस था।

यह कमर्शल मुस्कराहट ही योगराज की एकमात्र विशेषता और उसकी कारोवारी सफलता की सूचक थी। और हमारे इस भारत देश में (वल्कि दूसरे देशों में भी) व्यापारी वर्ग की, जिसमें वकील और डाक्टर भी शामिल हैं, आम तौर पर साहित्य और कला में कोई रुचि नहीं होती। वे अपनी व्यापारिक सफलता ही में मस्त रहते हैं और उसीपर गर्व करते हैं। कभी-कभी अपने थके हुए पेशेवर दिमाग को आराम देने के लिए ज़्यादा से ज़्यादा सस्ती किस्म के रूमानी और जासूसी उपन्यास पढ़ते हैं या ्र अर्धनग्न चित्रोंवाली सचित्र पत्रिकाएं खरीदते हैं। ्र ज भी कोई अपवाद नहीं था। वह तो अपने कारोवार में यहां तक मस्त था कि उसका ध्यान इन उपन्यासों और पत्रिकाओं की ओर भी नहीं जाता था। दरअसल लड़कपन ही से उसके मन में किताव और पढ़ाई के प्रति घृणा और उपेक्षा का भाव वैठ गया था। शायद यही कारण था कि दो वार फेल होने के वाद वह मैट्रिक वड़ी मुश्किल से तीसरे दर्जे में पास कर पाया था। इसलिए आगे पढ़ने का ख्याल छोड़कर वह तभी कारोवार में पड़ गया और उसमें सफलता प्राप्त करके अपनी व्यावहारिक वुद्धि का परिचय दिया। यों उसे समाज और सगे-सम्वन्धियों

में वांछित सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

अब जो व्यक्ति कारोबार में सफल है, जिसके पास धन है, वह अच्छी से अच्छी और सुन्दर से सुन्दर वस्तु खरीदने में समर्थ है। इसी तरह जिस व्यक्ति को अपनी कारोबारी सफलता के आधार पर समाज मे सम्मान और प्रतिष्ठा प्राप्त है वह अच्छी से अच्छी और सुन्दर से सुन्दर लड़की के साथ शादी रचाने मे समर्थ है। मर्द की यह सफलता मात्र लड़की के सब गुणों और योग्यता पर भारी है और विद्रोही से विद्रोही स्वभाव की लड़की भी, समाज की विवाह-प्रथा को ठीक न मानते हुए भी, मर्द की इस सफलता के आगे हथियार डालने पर विवश है। लेकिन आधुनिक शिक्षित लड़कियां हथियार डालने को हथियार डालना न मानकर अपनी इस विवशता को तर्क, बुद्धि और पुस्तक-ज्ञान से ढांकने का प्रयत्न करती है।

योगराज और अमिता की शादी भी ऐसे ही तय हुई। यह ठीक है कि शादी से पहले योगराज ने अमिता को और अमिता ने योगराज को देखा था। और कहने-भर को दोनों ने एक-दूसरे को पसन्द किया था और शादी में दोनो की मर्जी शामिल थी। दरअसल पसन्द योगराज ने अमिता को किया था और उसीकी मर्जी से यह शादी हुई थी। जहां तक अमिता का सम्बन्ध है, अमिता की मजबूरी ही को मरजी समझ लिया गया था। चूंकि वह शादी के समय इक्कीस-बाईस साल की बालिग और शिक्षित लड़की थी, इसलिए यह भी कहा जा सकता है कि उसने खुद मजबूरी

अमिता के गुण-स्वभाव को समझने की न तो उसमें बुद्धि थी और न इतने थोड़े समय में यह सम्भव ही था। दर-असल, अमिता को योगराज की मौसी ने पसन्द किया था और उसीके माध्यम से यह शादी सम्पन्न हुई थी।

योगराज अपने कारोबार में इतना व्यस्त रहता था कि उसे ब्याह-शादी के बारे में भी सोचने की फुरसत नहीं थी। बहिन की शादी पिता ने तय की थी। जब कल्याण पति से लड़-झगड़कर लौट आई तो पिता मर चुके थे। योगराज ने बहिन से एक बार भी नहीं पूछा कि उसका पति क्या चाहता है, झगड़ा क्यों हुआ और यह अब किसी तरह निपट भी सकता है या नहीं। यह पूछने और सोचने की उसे फुरसत ही नहीं थी। उसे सिर्फ इतना मालूम था कि कल्याण ससुराल से लौट आई है और उसके साथ रहती है। अपने ब्याह के बारे में भी उसने कभी नहीं सोचा था। निकटतर सम्बन्धियों में उसकी एक मौसी थी, जो मां की तरह उसमें दिलचस्पी लेती थी। घर-गृहस्थी बसाने की बात वही सोचती थी, शादी की चिन्ता उसी को थी और वह योगराज से कहती भी रहती थी, 'बेटा, अब शादी कर लो।' क्या इस मुए कारोबार ही में देह

खपा दोगे ?'

चार-पाच मर्तबा यह बात सुनकर अपने लिए दुल्हन ढूंढ़ने का काम योगराज ने मौसी ही को सौंप दिया था। उसने कई लड़कियां देखीं। उनमें से एक-दो पसन्द भी आईं; लेकिन किन्हीं कारणों से उनसे शादी सम्भव न हो सकी। फिर वह एक दिन अपने देवर के घर 'नाम-संस्कार' के समारोह पर गई। वहां उसने अचानक अमिता को देखा जो अपने तौर-तरीके और रूप-रग के कारण दूसरी सब लड़कियों से अलग पहचानी जाती थी। मझोला कद, कोमल गात, सुन्दर नाक-नक्श और अंग-अंग से जोबन टपक रहा था, फिर जब वह बोलती थी तो कानों में एक अजीब-सी मिठास घुल जाती थी और उसकी आवाज़ देर तक फिज़ा में गूंजती रहती थी, जैसे कहीं दूर चादी की घंटी धीमे-धीमे बज रही हो। सखियों के बहुत आग्रह करने पर अमिता ने अपनी एक कविता भी सुनाई। कविता का भाव और अर्थ जो था, सो था। उसपर किसीका ध्यान नहीं गया। वहा जितनी औरतें और लड़किया एकत्रित थीं, सब अमिता के मधुर बोल सुनकर झूम उठीं।

मौसी अमिता के रूप-रंग और मधुर स्वर पर इतनी मुग्ध हुई कि वह देवर के घर से सीधे योगराज के पास दुकान पर पहुंची और जाते ही बोली—

'योग, मैंने तुम्हारे लिए लड़की ढूढ़ ली है।'

योगराज ने बिल-बुक में आंकड़े जोड़े थे और अब भी उन्हींमें खोया हुआ था।

[illegible] की वात सुनकर उसकी विचार-
[illegible]।

'हां, लड़की। समझ लो, ऐसी सुन्दर है कि उसके आते ही तुम्हारा घर जगमगा उठेगा।'

'अच्छा···तो ठीक है।'

'मैं शादी की वातचीत चलाऊं?'

'जव शादी करनी है तो वातचीत भी चलानी ही होगी।' योगराज ने आंकड़ों के प्रभाव से मुक्त होकर कहा और कुर्सी में पहलू वदला।

'लेकिन वेहतर है, शादी से पहले तुम भी उसे देख लो।'

'ठीक है। मैं भी देख लूंगा।'

अतएव मौसी ने वातचीत चलाई और अमिता के पिता का अनुमति पाकर देवर के मकान पर, क्योंकि देवर की ड़ी लड़की रेखा अमिता की सहेली थी, उस ऐतिहासिक भेंट की व्यवस्था हुई जिसमें योगराज ने अमिता को देखा और मुस्कराते हुए 'ठीक है' कह दिया। अगर मौसी ने अमिता के वजाय अपनी पसन्द की किसी दूसरी लड़की को दिखाने की व्यवस्था की होती तो योगराज उसे भी देखता और इसी कमर्शल अन्दाज़ से मुस्कराकर 'ठीक है' कह देता। मौसी में उसका पूरा भरोसा था और दान-दहेज की उसे फिक्रनहीं थी!

लेकिन अमिता के लिए 'ठीकहै' कह देना सहज नहीं था। उसने सपने संजोये थे, प्यार को अपने जीवन का

उद्देश्य बनाया था, गोपाल से प्यार किया था और उससे प्यार का प्रतिदान पाया था। जब किसी दूसरे व्यक्ति से शादी करना उसे अपने सपनों की हत्या, उद्देश्य की पराजय, गोपाल से विश्वासघात और अपने से छल जान पड़ता था, इसलिए अन्तिम निर्णय से पहले वह कई रात तक सो न सकी। आकुलपन से सोचती रही। आखिर विरासत में मिला दर्शन, जो शरीर और मन के अस्तित्व को अलग-अलग मानता है, उसके आड़े आया और यह दर्शन उसकी विवशता को ढंकने का आवरण बन गया।

अमिता को उसके पिता नर्मदाप्रसाद ने पाला-पोसा था। मां को उसने देखा तक नहीं था। वह उस समय मर गई थी जब अमिता सिर्फ छः महीने की थी। पिता को जब पत्नी की याद आ जाती तो उसके चेहरे का भाव गम्भीर हो जाता और वह कुछ क्षण की चुप्पी के बाद कहता, 'अमिते! तुम अपनी मा का प्रतिरूप हो। एकदम यही नक्शा था, यही छोटी तीखी नाक, यही आंखें!'

अन्तिम वाक्य कहते-कहते नर्मदाप्रसाद का स्वर एक आह की तरह क्षीण पड़ जाता और वह एकटक बेटी की ओर देखने लगता।

अमिता ज्यों-ज्यों बड़ी होती गई, बाप की मनोगत भावनाओं को अधिकाधिक समझने लगी। जब उसकी उम्र तेरह-चौदह बरस थी तो बाप ने बेटी के मुख पर सहानुभूति

[illegible] पढ़कर पत्नी की इस याद में [illegible] 'वेटी, हम दोनों में प्रेम-सम्वन्ध [illegible] दुनिया का मुंह वन्द करने मात्र को [illegible]

[illegible] उत्सुकता जागी, जो वढ़ती रही, [illegible] पिता जब भी पत्नी का जिक्र [illegible] अमिता की आंखों में झलक आती। [illegible] लगी तो इसे शान्त करने के लिए दुनिया का मुंह वन्द करने मात्र की कहानी भी वाप ने वेटी को कह सुनाई। दरअसल वे अव पिता-पुत्री ही नहीं एक-दूसरे के संगी-साथी, दो संवेदनशील प्राणी भी थे।

नर्मदा की उम्र इक्कीस-वाईस वरस थी तो उसका अपने पड़ोस की एक जवान विधवा से प्रेम हो गया। विधवा जाति की व्राह्मणी और नर्मदा खत्री था और विधवा-विवाह का रिवाज भी उस समय इतना नहीं था। जातिभेद, रीति-रिवाज और समाज का अविचार उनके इस प्रेम को कदाचित् सहन नहीं कर सकता था। दोनों ने सलाह की, एक दिन घर से भागे और लाहौर चले आए।

लाहौर पहुंचकर उसने अपनी प्रेमिका से आर्यसमाज मन्दिर में व्याह कर लिया था। अब चूंकि आर्यसमाज ने समाज के अविचार से नर्मदाप्रसाद के प्रेम की रक्षा की थी; इसलिए आर्यसमाज में उसकी आस्था हो जाना स्वाभाविक और अनिवार्य था। वह अपने नये उद्‌गारों

को व्यक्त करने के लिए पैम्फलेट लिखता, भजनों और गीतों की रचना करता था। पर उसके भजनों और गीतों में एक अदृश्य शक्ति की अर्चना-आराधना की अपेक्षा क्रूर रीति-रिवाज, अंधविश्वास और रूढ़िवाद पर प्रहार की मात्रा कहीं अधिक रहती थी।

अमिता ने पिता के प्रभाव ही से कविता लिखना शुरू किया। वह उसके मानवरूप—उसके व्यक्तित्व से भी बहुत प्रभावित थी।

नर्मदाप्रसाद के नाम में दक्षिण और उत्तर का मेल हुआ था। वह उदार, विशाल और सहिष्णु था और अपने सहधर्मियों की धार्मिक संकीर्णता और साम्प्रदायिकता की भावना उसमें नाममात्र को नहीं थी। वह धीमे-धीमे कोमल स्वर में बात करता था और जब बोलता था तो आंखों से मन्द-मन्द प्रकाश छनता था। प्रेम में व्यक्ति के चरित्र को उदात्त और मृदु बनाने की जो चमत्कारी शक्ति है नर्मदाप्रसाद उसका सजीव उदाहरण था।

पत्नी की मृत्यु के उपरान्त बेटी ही उसके अरमानों और उमंगों का केन्द्र थी। उसने अमिता को लाड़ से पाला-पोसा और सामर्थ्य-भर अच्छी शिक्षा दिलाई। और जब अमिता व्याह के लायक हुई तो हर पिता की तरह उसकी यही साध थी कि बेटी को ऐसा घर-वर मिले जहां उसे सारी सुख-सुविधाएं प्राप्त हों।

माहौल ही ऐसा था कि प्यार अनजाने ही अमिता के जीवन का उद्देश्य बन गया। जब वह कालेज में

हुई तो गोपाल उससे दो वर्ष आगे पढ़ता था। वह सीधे-सरल स्वभाव का निश्छल विद्यार्थी था और वीणा बहुत अच्छी बजाता था। अमिता ने उसे तीन-चार कंसर्टों में वीणा बजाते सुना और वह उसके प्रति एक आसक्ति-सी अनुभव करने लगी। वह कालेज में उसे कहीं देख लेती तो अपने भीतर गुदगुदी-सी महसूस करती और मन उससे बात करने को चाहता।

फिर जब अमिता कविता-प्रतियोगिता में प्रथम रही तो गोपाल ने आप ही आप उसके पास आकर उसे मुक्त-कंठ से बधाई दी। अमिता खिल उठी। गोपाल भी मुस्कराया। कारण शायद यह था कि मन को मन से राहत होती है।

इसके बाद वह एक-दूसरे के निकट आते गए और धीरे-धीरे आसक्ति ने प्रेम का रूप धारण किया।

गोपाल विज्ञान का विद्यार्थी था और एम० ए० पास करके अपने उसी कालेज में डिमोंस्ट्रेटर लग गया था। उसका अधिकांश समय विज्ञान के अध्ययन और परीक्षणों में बीतता था। उसका मत था कि विज्ञान सिर्फ पढ़ने-सीखने और व्यापार की वस्तु नहीं है, बल्कि उसे जीवन का अंग बनाने—दैनिक व्यवहार में ढालने की ज़रूरत है। जब हम विज्ञान को दैनिक व्यवहार में ढाल लेंगे तभी वर्तमान गतिरोध टूटेगा और तभी हमारा सामूहिक राष्ट्रीय जीवन प्रगति के मार्ग पर आगे बढ़ पाएगा। वह अपने इन विचारों के प्रचार और प्रसार के लिए लेख भी

लिखता था।

अमिता की अपनी रुचि साहित्य में थी। लेकिन चूकि उसे गोपाल से प्रेम था ; इसलिए वह उसके विज्ञान-सम्बन्धी विचारों का आदर करती थी। लेकिन प्रेम और आदर में जो अन्तर है, वह अमिता की दृष्टि मे स्पष्ट नहीं था इसलिए वह यह समझ नहीं पाती कि वह गोपाल से प्रेम अधिक करती है या प्रेम से अधिक उसका आदर करती है।

'यह बताइए,' एक दिन अमिता ने गोपाल से कहा, 'क्या विज्ञान और कविता में विरोध है ?'

'नही !' गोपाल ने उत्तर दिया।

अमिता आश्वस्त हुई और उसने कृतज्ञ भाव से गोपाल की ओर देखा।

उसके यह प्रश्न पूछने का कारण यह था कि अमिता जब भी गोपाल से बात करती थी, उसे अपने मन में एक उलझन महसूस होती थी और वह इस उलझन को मिटाना चाहती थी। लेकिन इस उलझन से उत्पन्न होनेवाला वास्तविक प्रश्न यह था, 'बताइए, क्या आप प्रेम को जीवन का उद्देश्य समझते हैं ?' जब इस प्रश्न का उत्तर भी गोपाल 'नही' देता तो अमिता आश्वस्त होने के बजाय चौंकती और तब उलझन भी शान्त होने के बजाय और बढ़ती।

लेकिन अमिता ने चूकि अपने मन को नही समझा इसलिए इस उलझन को भी नहीं समझा। प्रेम और

आदर की भावनाएं आपस में गडमड रहीं। यही कारण था कि वह व्याह के वारे में कोई निश्चय नहीं कर पाई। जव भी यह समस्या सामने आती वह यह सोचकर टाल देती, 'जल्दी क्या है ? जव पिताजी वात छेड़ेंगे तो साफ कह दूंगी कि मैं गोपाल से प्रेम करती हूं।' और उसे विश्वास था कि पिता जैसे उसकी और सव वातें मानते आए हैं, यह वात भी मान लेंगे और जैसे उसकी और सव इच्छाएं पूरी होती आई हैं यह भी इसी तरह पूरी हो जाएंगी।

लेकिन इससे पहले कि वह अपनी इच्छा पिता को वता पाए मौसी ने योगराज के साथ शादी की वात चलाई। नर्मदाप्रसाद ने योगराज को देखा, उसके करोवार को देखा और वह गद्गद हो उठा। कहां उसकी छोटी-सी कितावों की दुकान, जिसपर उसकी कविताएं और समाज-सुधार के पेम्फलेटों के अलावा आर्यसमाज की धार्मिक पुस्तकें विकती थीं और इसी आय से वाप-वेटी की जीविका चलती थी, और कहां योगराज का मेडिकल स्टोर जिसपर दसों नौकर काम करते थे। फिर कोई जेठ-जिठानी नहीं, किसी दूसरे का हिस्सा-पत्ती नहीं, इतने वड़े घर की अमिता अकेली मालिकन होगी, रानी वनकर रहेगी। नर्मदाप्रसाद ने वेटी के लिए जैसे घर-वर की कामना की थी, यह उससे कहीं वढ़-चढ़कर था। वह मौसी के इस प्रस्ताव को वेटी का सौभाग्य समझकर प्रसन्न हुआ और उसने शादी के इस प्रस्ताव का स्वागत किया लेकिन वेटी का मत

जान लेना भी जरूरी समझा।

'देखिए,' उसने मौसी और उसके देवर दयाराम से कहा, 'मैं इस सम्बन्ध को अपना बहुत बड़ा सौभाग्य और सम्मान समझता हूं। लेकिन आप जानते हैं कि अमिता मेरी इकलौती लड़की है, मैंने उसे लिखाया-पढ़ाया है और आज तक उसकी किसी भी इच्छा की अवहेलना नहीं की। अब शादी के मामले में, जिसका मनुष्य के जीवन में सबसे बड़ा महत्त्व है, मैं यह चाहता हूं कि अमिता लड़के को देख ले और खुद इस बात का फैसला करे।'

'हां, हां, देख लेने में क्या हर्ज है। ऐसा लड़का तो चिराग लेकर ढूंढ़ने से भी नहीं मिलेगा।' दयाराम ने उत्तर दिया।

'देखने-दिखाने की तो आजकल रस्म चल पड़ी है। अच्छा है, इस बहाने लड़का भी लड़की को देख लेगा और दोनों का मान रह जाएगा।' मौसी ने बात में बात मिलाई और आगे कहा, 'वैसे लड़का जितना सच्चरित्र और सुशील है लड़की भी उतनी ही गुणवती और रूपवती है। अमिता को देखते ही मेरे मन में तो यह बात आई कि इन दोनों की जोड़ी भगवान ने बनाई है।'

देखने-दिखाने की मुलाकात का दिन, समय और स्थान तय हो गया।

बातचीत की भनक अमिता के कान में पड़ चुकी थी और उसने स्थिति को समझ लिया था। लेकिन वह असमंजस में पड़ी सोच रही थी कि क्या करे और क्या न करे।

'वेटी, तुम्हें इस इतवार को अपनी सखी रेखा के घर जाना होगा।' नर्मदाप्रसाद ने उसे वताया।

'अच्छा, पिताजी चली जाऊंगी।' अमिता ने उत्तर दिया।

'मालूम है न क्यों जाना है ?' पिता ने पूछा।

'नहीं···हां, मालूम है।' वह वोली।

वाप ने वेटी के मुख की ओर देखा और एक-दो क्षण मौन के वीते।

'देखो वेटी, दुविधा में पड़ने और घवराने की कोई वात नहीं। तुम जानती हो कि मैंने तुमसे तुम्हारी मां की तरह अपने प्राणों की समस्त शक्ति से प्यार किया है। आज तक तुम्हारी हर इच्छा पूरी हुई है। तुम दिल छोटा न करो। लड़का देख लो, शादी के मामले में भी तुम्हारी ही इच्छा सर्वोपरि होगी। मैंने अपनी ओर से उन्हें कोई वचन नहीं दिया, कोई प्रतिज्ञा नहीं की। अपना वर पसन्द करने में तुम्हें मेरी ओर से पूरी स्वतन्त्रता है।'

जहां पिता वेटी की इच्छा का आदर करता था, वहां अमिता भी यह ध्यान रखती थी कि उसके आचरण से पिता के मन को किसी प्रकार की ठेस न पहुंचे। अव भी अपनी स्वतन्त्रता की वात सुनकर उसने कृतज्ञता के भाव से पिता की ओर देखा और मुलाकात के लिए जाने की अनुमति दे दी।

अगर अमिता यह कहती, 'पिताजी, मैंने अपना वर पहले ही पसन्द कर लिया है और वह गोपाल है।' तो

नर्मदाप्रसाद निश्चित रूप से उसकी बात मान लेता और वह दयाराम को लिख भेजता कि मेरी बेटी इस सम्बन्ध के लिए सहमत नहीं है।

लेकिन मुलाकात के लिए जाने की अनुमति देकर अमिता ने सारी ज़िम्मेदारी अपने ऊपर ले ली। ज़िम्मेदारी मामूली नहीं थी। यह उसके प्रेम का सवाल था। ज़रा-सी कमज़ोरी दिखाने से उसके उद्देश्य की हत्या होती थी। अतएव उसे दो रात नींद नहीं आई। वह इसी बारे में सोचती रही। सोच-साचकर पहले उसने तय किया,'ठीक है, मैं रेखा के घर जाऊंगी। जाने में क्या हर्ज है। पर मैं उस लड़के के प्रति उपेक्षा-भाव अपनाऊंगी और इस ढंग से बात करूंगी कि वह खुद मुझे नापसन्द कर दे।' लेकिन यह विचार बहुत देर नहीं टिक पाया क्योंकि दूसरे ही क्षण उसने सोचा कि एक मामूली व्यापारी तुम्हारे जैसी पढ़ी-लिखी रूपवती लड़की को नापसंद करे, यह तो बहुत बड़ा अपमान है, इसमें पिता के मन को भी कठोर आघात पहुंचेगा और उसकी सखी रेखा तथा दूसरे लोग क्या सोचेंगे। इसलिए उसने दूसरा अन्तिम निर्णय यह किया—'मैं जाऊंगी। मैं ही उसे नापसन्द करूंगी और फिर गोपाल से सगर्व कहूंगी कि देखो गोपाल, मैंने तुम्हारे और अपने प्रेम के लिए सारी सुख-सुविधाओं को और धन-दौलत को त्याग दिया है।'

यह सोचकर वह इतवार को रेखा के घर निश्चित समय पर योगराज के साथ चाय पी,

की साधारण औपचारिक बातचीत हुई। और योगराज के उसे नापसन्द करने का सवाल ही पैदा नहीं होता था। वह जब वहां से चला तो बहुत प्रसन्न था और उसे मौसी का यह वाक्य याद आ रहा था कि 'उसके आते ही तुम्हारा घर जगमगा उठेगा।' अमिता के रूप से वह भी प्रभावित हुआ था।

लेकिन अमिता उस रात घर नहीं लौटी। पिता से आंखें मिलाकर अपनी बात कह देने का उसमें साहस नहीं था। इसलिए कहला भेजा कि रेखा उसे आने नहीं देती, वह आज उसीके पास रहेगी।

वह रात-भर सो नहीं सकी, पड़ी सोचती और अपने-आपसे लड़ती रही। उसके भीतर तीव्र अन्तर्द्वन्द्व छिड़ा था। गोपाल का और उसका उद्देश्य भिन्न-भिन्न होने से मन में जो उलझन पैदा हुई थी, वह अब फिर उभर आई और अमिता अब भी प्रेम और आदर का अन्तर समझने में असमर्थ रही। इसलिए वह कोई ऐसा उपाय सोचने लगी, जिससे गोपाल के साथ यह सम्बन्ध भी बना रहे और पिता के मन को ठेस भी न पहुंचे। आखिर दिन चढ़ने के करीब जब उसे नींद आई तो उपाय सूझ गया था और वह अन्तिम निर्णय कर चुकी थी। निर्णय यह था—'ब्याह तो मैं दुनिया का मुंह बन्द करने मात्र को कर रही हूं, प्रेम फिर भी गोपाल से करूंगी।'

सोकर उठी तो उसका मन स्वस्थ था। वह जो निर्णय करके सोई थी वह अब और स्पष्ट हो गया था;

अमिता को वह न सिर्फ सही बल्कि अनूठा भी जान पड़ता था। घर लौटकर उसने पिता से कह दिया कि लड़का उसे पसन्द है और फिर गोपाल को खत लिखा। इस खत का उत्तर उसे व्याह के तीन दिन बाद मिला। कारण यह कि गोपाल उसे व्याह से रोकना नहीं चाहता था। वह अमिता से प्रेम अवश्य करता था, उसका खत पढ़कर वह झुंझलाया भी था; लेकिन वह उसके मार्ग में बाधा नहीं बनना चाहता था। यह परीक्षा का समय था। अगर वह परीक्षा में पूरी नहीं उतरती तो उससे कुछ कहना-सुनना, प्रेम की दुहाई देकर अपने-आपको उसपर ठूसना व्यर्थ था। इस-लिए वह चुपचाप रहा।

…गोपाल के पत्र ने अमिता को झंझोड़ दिया। उसका विश्वास, आशाएं और अरमान धूल में मिल गए। जिस निर्णय को उसने सही और अनूठा समझा था, वह अब उसका मुंह चिढ़ा रहा था। गोपाल ने उसके प्रेम को प्रेम ही नहीं माना बल्कि उसे उन्माद बताकर आरोप लगाया था कि अमिता ने भौतिक सुख-सुविधाओं की खातिर ही यह शादी की है।

यह ठीक है कि शादी से सुख-सुविधाएं भी प्राप्त हुई थीं, इसलिए गोपाल के आरोप को झुठलाना सहज नहीं था। अमिता ने खुद भी तो पहले यही फैसला किया था कि योगराज को नापसन्द करके वह गोपाल से सगर्व कहेगी, 'देखो गोपाल, मैंने अपने और तुम्हारे प्रेम की खातिर सारी सुख-सुविधाओं और धन-दौलत को त्याग दिया।'

लेकिन जब परीक्षा का—आदर्श को आचरण में ढालने का समय आया तो वह अपने निर्णय पर स्थिर न रह सकी, सुख-सुविधाओं और धन-दौलत को त्यागने में असमर्थ रही। उसे वे क्षण स्मरण हो आए, जब उसमें योगराज को देखने के बाद पिता के सामने जाकर मन की

बात कहने की हिम्मत नहीं थी। काश ! वह रेखा के पास न ठहरती, सीधी घर जाती और पिता से स्पष्ट कह देती, 'मुझे यह सम्बन्ध स्वीकार नही है। मैं गोपाल से प्रेम करती हूं !'

मगर वह ऐसा नहीं कर सकी। घर जाने के बजाय वह रेखा के पास ठहरी और दुर्बलता को अपने पर छा जाने का अवसर दिया। उफ ! वह रात कितनी भयानक थी, जब उसने इस ख्याल से कि पिता के मन को ठेस न पहुंचे, अपना यह निर्णय पलट दिया था।

इस सारी घटना पर वह फिर से विचार करती थी तो गोपाल का आरोप सही जान पड़ता था। शायद उसके मन में भौतिक सुख-सुविधा की लालसा जाग उठी थी। इसी लालसा ने उसे घर जाने से रोका, इसी कारण वह धन-दौलत को ठुकराने के त्याग का परिचय न दे पाई और इसी कारण उसने अपने निर्णय को पलट दिया। पिता के मन को ठेस न पहुंचाने की बात तो उसने अपने-आपको धोखा देने के लिए सोची थी। यह उसकी अपनी कमजोरी थी। वरना पिता इस निर्णय से दु.ख माननेवाले नहीं थे। ऐसा सोचना ही उनके साथ अन्याय था, उनके व्यक्तित्व को कम करके आकना था।

इसका मतलब यह हुआ कि उसका प्रेम गोपाल के शब्दों में निरा उन्माद था, जो मानव-दुर्बलता—भौतिक सुख-सुविधा की लालसा के आगे टिक नही पाया जैसे सूरज की गर्मी के आगे कुहरा नही टिक पाता। तर्क का यह ग्राम

फैसला पलट देने से भी अधिक भयंकर था और अमिता इसे स्वीकारने को तैयार नहीं थी, क्योंकि उसका विश्वास था कि यह सत्य नहीं है। अमिता के लिए सत्य यह था कि उसका प्रेम उन्माद नहीं प्रेम है, प्रेम जो उसे घुट्टीमें मिला था, प्रेम जो उसके जीवन का उद्देश्य था। प्रेम को एक नये उच्च और उदात्त स्तर पर पहुंचाने के लिए ही उसने उस रात रेखा के घर अपने पहले निर्णय को पलटकर यह दूसरा नया निर्णय किया था कि वह दुनिया का मुंह बन्द करने मात्र को यह शादी कर रही है। इस शादी से वह योगराज को सिर्फ अपना शरीर सौंपेगी और मन पर, जो उसका वास्तविक अस्तित्व है, गोपाल का अधिकार वरावर वना रहेगा और वह आजीवन उससे प्रेम करती रहेगी। वह यह अधिकार अपनी खुशी से दे रही थी। समाज का या किसी और का इसमें कोई दखल नहीं था। वह किसीको भी यह अधिकार देने में पूर्ण रूप से स्वतन्त्र थी और गोपाल को उसने यह अविकार इसलिए दिया था कि वह उससे प्रेम करती थी। वह समझती थी कि शादी में योगराज को शरीर सौंप देने के वाद उनका यह प्रेम उच्च और उदात्त स्तर पर पहुंच जाएगा क्योंकि तव वह वासना से मुक्त होगा और पति-शासन के परम्परगत आतंक से मुक्त होगा, शुद्ध, पवित्र, निश्छल और निडर प्रेम! वह प्रेम जो राधा तथा गोकुल की दूसरी गोपियों ने कृष्ण से किया था और मीरा ने जिसके गीत गाए हैं। वे गीत जन-मानस पर आज भी अंकित हैं और देश के समूचे वातावरण में

मुखरित हैं ।

और अमिता अपने इस शुद्ध, पवित्र, निश्छल और निडर प्रेम के आधार पर नये गीतों की रचना करेगी !

यह नया निर्णय कर लेने के बाद अमिता जब घर पहुंची तो वह सचमुच खुश थी, गोपाल को पत्र लिख देने के बाद खुश थी और शादी के बाद भी खुश थी। खुश वह इसलिए थी कि इस दूसरे निर्णय में उसे अपनी उच्च प्रतिभा और कल्पना की झलक दिखाई देनी थी, और उसका यह विश्वास था कि शादी न करने से शादी कर लेना कहीं बड़ा त्याग है। इससे एक तरफ पिता की मनोकामना पूरी होगी और दूसरी तरफ एक ऐसे व्यक्ति को जिसे वह बिलकुल पसन्द नही करती यह नश्वर शरीर सौंप देने से राधा का शुद्ध, पवित्र, निश्छल और निडर प्रेम उसके लिए एक अनुभूत सत्य बन जाएगा जिसे वह मीरा की तरह कविता मे परिणत करेगी ।

गोपाल का पत्र पढ़ने के बाद भी वह यह तय नहीं कर पाई कि उससे कहीं कोई भूल हुई है तथा अपने से या गोपाल से उसने किसी प्रकार का धोखा किया है। उसे अपना यह दूसरा निर्णय पहले निर्णय से कही बेहतर, कहीं महान और कही अधिक त्यागपूर्ण जान पड़ता था।

फिर इस दूसरे निर्णय की विशेषता यह थी कि इसमें अमिता को अपनी उच्च प्रतिभा और कल्पना की झलक दिखाई देती थी। उसके जीवन के दो मुख्य पहलू थे और दोनों स्पष्ट हो जाते थे। एक यह कि वह प्रेम करती थी

और दूसरा यह कि वह कवयित्री थी। प्रेम और कविता को उच्च स्तर प्रदान करने के लिए ही उसने यह त्याग किया था—एक ऐसे व्यक्ति से शादी करना मंजूर की थी, जिसे वह बिलकुल पसन्द नहीं करती और न आइंदा कभी कर सकेगी।

यों अपने पहले और दूसरे निर्णय को जब आमने-सामने रखकर देखा तब भी अमिता को अपनी कोई भूल दिखाई नहीं दी। उसका अब भी यही विश्वास था कि उसने योगराज से शादी करके अपने प्रेम को एक उदात्त स्तर पर पहुंचा दिया है। इस प्रेम को प्रेम न मानकर उन्माद कहना गोपाल की भूल है। और फिर यह आरोप कि उसने यह शादी भौतिक सुख-सुविधाओं के लिए की है, अमिता के प्रति बहुत बड़ा अन्याय है—एक ऐसा अन्याय जो अधिकार का भूखा पुरुष स्त्री के साथ हमेशा करता आया है। तभी तो गोपाल ने इतनी निष्ठुरता से लिख दिया था कि 'जिसे शरीर सौंपा है उसे मन भी सौंप दो…'

इसका मतलब यह हुआ कि गोपाल का प्रेम वासना से मुक्त नहीं था। वह मेरा शरीर चाहता था। शरीर नहीं मिला तो झुंझला उठा और इसी झुंझलाहट में शरीर और मन के भेद को भ्रान्ति बताकर सम्पूर्ण समर्पण की सीख देना शुरू कर दी। उसे क्या मालूम कि जिस व्यक्ति से मैंने शादी की है मैं न उससे सम्पूर्ण समर्पण चाहती हूं और न सम्पूर्ण समर्पण कर सकती हूं। गोपाल ने न मुझे समझा है और न मेरे प्रेम को समझा है। वह एक वैज्ञानिक

है (सिर्फ वीणा बजा लेने से तो मनुष्य संगीतकार या कलाकार नही बन जाता) इसलिए वह नही समझ सकता···

'न समझे' अमिता ने ऊंचे और दृढ स्वर मे कहा, 'मैं इसे सत्य कर दिखाऊंगी।'

अमिता फिर खुश थी। उसके मन में किसी प्रकार की ग्लानि या विक्षोभ नही था। योगराज के साथ उसका सम्बन्ध वही था जो उसने तय किया था, या शादी द्वारा स्थापित हो गया था। और योगराज इतने ही से संतुष्ट था। उसके लिए व्याह का सीधा-स्पष्ट अर्थ यह था, कि शादी करके आदमी एक अदद स्त्री का पति बन जाता है और वह भी अमिता नाम की एक स्त्री का पति बन गया था। यह और भी खुशी तथा गर्व की बात थी कि वह स्त्री जब पहन-ओढ़कर बैठती थी तो आधुनिकतम डिजाइन के पर्दों और फर्नीचर से मैच करती थी। अर्थात् शरीर की सुन्दर और आकर्षक थी और उससे घर की शोभा बढ़ती थी।

इससे अधिक की कामना योगराज ने नही की थी; वह कर ही नहीं सकता था। इसीलिए अमिता ने जब शरीर और मन के अन्तर की बात छेड़ी तो उसने सीधे स्पष्ट ढंग से उत्तर दिया, 'शरीर की तरह मन के भी कुछ रोग होते है, और उनकी हमारे पास दवाइया हैं।' यह वाक्य उसके व्यक्तित्व का दर्पण था। अमिता ने इसे देखा, पहचाना और वह संतुष्ट हो गई। उसे पता चल

गया कि जो चीज़ वह देना नहीं चाहती, खुद योगराज भी उसे पाने की कभी इच्छा नहीं करेगा। जिस तरह वह पहले 'चालीस सेर का तौल' वाक्यखण्ड दोहरा कर हंसी थी उसी तरह अब 'शरीर की तरह मन के भी रोग होते हैं,' दोहरा कर एकान्त में बैठी हंसती और इस नये घर में अपनी स्थिति पर विचार करती रही।

'आज हम मौसी के घर खाने पर चलेंगे।' योगराज जब नहा-धोकर और नाश्ता करके दुकान पर जाने के लिए तैयार हुआ तो उसने अमिता को बताया और फिर मुस्कराते हुए आगे कहा, 'ठीक है ?'

'हां, ठीक है।' अमिता ने भी मुस्कराते हुए उत्तर दिया।

'तुम एक बजे के करीब कल्याण के साथ दुकान पर आ जाना। ठीक है ?'

'हां, ठीक है।'

फिर इतवार को जब वे सुबह का नाश्ता करने बैठे तो योगराज को प्लेट से टोस्ट उठाते हुए कोई भूली हुई बात याद आ गई और उसने कहा :

'मैंने आज कुछ दोस्तों को चाय पर बुलाया है···।'

'चाय पर !' अमिता जो अपनी नई कविता की किसी पंक्ति पर विचार कर रही थी, चौंकी।

'हां, वे चार बजे आएंगे। ठीक है ?'

अमिता चुपचाप उसके मुंह की ओर देखती रही।

वह अभी तक अपने विचार में गुम थी, इसलिए उसने न पूरी बात सुनी थी और न समझी थी।

'भाभी, कहती क्यों नहीं, ठीक है।' कल्याण अमिता को चुप देखकर बोली और फिर भाई से मुखातिब हुई, 'इसमें परेशानी की क्या बात है ? तुम चिन्ता न करो, सब इन्तजाम हो जाएगा।'

इसी समय नौकर चाय और आमलेट लेकर आया और जब वह ट्रे रखकर लौटने लगा तो कल्याण ने कहा—

'चरतू, सुनो।'

'जी, बीबीजी।' चरतू रुक गया।

'तुम नाश्ते से निपट लो तो मेरे साथ बाजार चलना। शाम की चाय का सामान लाना है।'

चरतू ने सिर हिलाकर हामी भरी। जब वह चला गया तो कल्याण ने भाई से पूछा, 'क्यों ठीक है न ?'

'हां, ठीक है।' योगराज उत्तर देकर मुस्कराया और इस बार अमिता भी मुस्कराई।

नौकर के अलावा इस घर में जो तीन प्राणी थे, कहने को वे तीनों एक ही परिवार के सदस्य थे; लेकिन किसी परिवार के सदस्यों को तादात्म्यता के सूत्र में बांधनेवाला एक मानसिक सम्बन्ध होता है वह उनमें नहीं था। तीनों अपने-आपमें पूर्ण इकाई थे और वे

अलग-अलग धुरी पर घूम रहे थे और विभिन्न नक्षत्रों की भांति घूमने का कक्ष-पथ भी अलग-अलग था। उदाहरण के लिए योगराज का कक्ष-पथ उसका कारोबार था। स्टोर में कौन-सी दवा किस मात्रा में मौजूद है, कौन-सी चट से मंगवाई जाए और कौन-सी दवा की खपत अधिक होती है—इस बारे में वह हर क्षण चौकस और चौकन्ना रहता था। फिर स्टोर में अधिकांश दवाइयां विदेशी थीं, जिनके आयात-लाइसेंस वम्वई और कलकत्ते की थोक-फरोश फर्मों के पास थे। उनके एजेंट अक्सर आते रहते थे। उनका हिसाव चुकाने और आवभगत करने में योगराज हमेशा इस वात का ध्यान रखता था कि वे उसके व्यवहार से प्रसन्न लौटें, दूसरे स्थानीय केमिस्टों के मुकावले उसे तरज़ीह दें और जितनी रियायतें उनसे मिलना सम्भव हों, वह सव ले सके। इतने वड़े कारोवार की इतनी वड़ी जिम्मेदारी संभाल लेने के वाद सिनेमा देखना, खाने पर जाना अथवा मित्रों को चाय के लिए वुलाना आदि वातें गौण थीं। उनमें अधिक दिलचस्पी लेना या उनके वारे में सोचना योगराज के वस का काम नहीं था और न उसके पास अवकाश था। इस वारे में उसने 'ठीक है' का सीधा-सादा रवैया अपना रखा था।

कल्याण कभी पूछती—'आजकल लेमू का मौसम है। दस सेर लेमू मंगवाकर अचार डाल लें ?'

'ठीक है। डाल लो।' योगराज संक्षेप में उत्तर देता।

'ये पर्दे पुराने हो गए। मेरा ख्याल है इन्हें अब बदल दिया जाए।'

'ठीक है। बदल दो।'

कई बार उसे यह संक्षिप्त उत्तर देने में भी परेशानी होती थी। इसलिए कल्याण ने उसे टोकना और उसकी राय लेना ही छोड़ दिया। वह अब 'ठीक है' में व्यक्त होनेवाले भाई के सीधे स्वभाव को भली भांति समझ गई थी। और योगराज के किसी काम में दखल न देने से वह खुद भी प्रसन्न थी क्योंकि पति के घर मे न सही, भाई के घर में तो वह पूर्ण अधिकारो के साथ मालकिन बनी हुई थी। औरत में शासन की भूख भी बहुत बड़ी भूख होती है। अगर वह शान्त हो जाए तो वह अपनी वासनाओं को संयत रख सकती है। अवचेतन रूप से ही कल्याण की यह धारणा बन गई थी कि वह भाई के घर में संतुष्ट रहकर पति को अपने दर्प का परिचय दे रही है। मन में अगर ज़रा भी आकुलता या व्यग्रता उठती तो वह अपना ध्यान झट दूसरी ओर बदल देती।

'चरतू!'

नौकर उसकी आवाज़ सुनकर सहसा चौंक उठता और हाथ का काम छोड़कर लपकता।

'जी, बीबीजी,' वह विनय भाव से पूछता।

'मैंने तुम्हें बरामदे में पोचा डालने को कहा था। देखो, अभी तक नही डाला।'

'जी, बीबीजी! भूल गया।'

'अच्छा अभी डालो।'

चरतू सत्रह-अठारह साल का पहाड़ी नौजवान था। ाई-तीन साल से इसी घर में काम कर रहा था। बाबू-ाी, और बीबीजी, उसने अब तक दोनों को समझ लेया था। यह जानते हुए भी कि कल्याण ने उससे पोचा डालने की बात बिलकुल नहीं कही, वह बिना हुज्जत किए अपनी 'भूल' मान लेता और हाथ का काम छोड़कर बीबी-जी के आदेश का पालन करता।

अमिता के आ जाने के बाद भी कल्याण की यह स्थिति अक्षुण्ण बनी रही।

'भाभी, आज कौन-सी सब्ज़ी मंगवाई जाए?'

शुरू-शुरू में उसने एक दिन अमिता से पूछा।

'जो तुम्हें अच्छी लगे।' उत्तर मिला।

'इसका क्या मतलब? तुम अपनी पसन्द बताओ।' उसने आग्रह किया।

'मतलब यह है,' अमिता मुस्कराकर बोली, 'कि जो तुम्हें और तुम्हारे भाई साहब को अच्छी लगती है, वह मुझे भी अच्छी लगेगी। मेरी अपनी कोई पसन्द नहीं।'

सब काम पहले की तरह कल्याण की मरज़ी से होता रहा। अमिता ने कभी किसी बात पर एतराज़ नहीं किया और खाने की किसी चीज़ पर नाक-भौं नहीं चढ़ाई। धीरे धीरे कल्याण ने समझ लिया कि भाई की तरह भाभी भी उसके क्षेत्र में दखल नहीं देगी।

अमिता के लिए इन बातों का कोई महत्त्व नहीं था। उसने घर-गृहस्थी के झंझटों में उलझ जाने के लिए नही, वल्कि अपने प्रेम को उच्च और उदात्त स्तर पर पहुंचाने के लिए शादी की थी। नई परिस्थिति के नये अनुभवों को कविता में परिणत करना ही उसके जीवन का एक-मात्र लक्ष्य था। उस दिन योगराज ने जब दोस्तों को चाय पर बुलाने की बात छेड़ी तो वह एक सुन्दर अछूते भाव को पक्तिबद्ध करने की मानसिक उधेड़-बुन में व्यस्त थी। वह घर के भौतिक वातावरण से दूर कल्पना में लीन सोच रही थी। विचार-प्रवाह कुछ इस प्रकार था :

बन्धनों से मुक्त
वासना से मुक्त
शुद्ध, पवित्र प्रेम
कली की सुगंध और सुषमा की भांति सूक्ष्म
कली को स्पर्श करना हो तो कर लो
सुगन्ध या सुषमा का स्पर्श सम्भव नही
सूक्ष्मता स्पर्शातीत है
स्पर्श में वासना है
वासना से मुक्त होकर
कली के स्पर्श की इच्छा त्याग कर ही
शुद्ध, पवित्र प्रेम का आभास सम्भव है
प्रेम आभास की वस्तु है
स्पर्श की नहीं
स्पर्श में वासना है

वासना स्पर्श है
और प्रेम आभास-मात्र है।

अमिता ने जब इस भाव को पंक्तिबद्ध किया—कविता का रूप दिया तब कहीं उसकी मानसिक पीड़ा शान्त हुई।

अमिता की कविताएं छठे-छमाहे पहले भी छपती थीं; लेकिन अब हर महीने बल्कि हर हफ्ते प्रकाशित होने लगीं। इससे वह और खुश हुई। उसका यह विश्वास दृढ़ हो गया कि योगराज से शादी करके उसने कोई भूल नहीं की, उसने अपने से या गोपाल से कोई धोखा नहीं किया। उसका दूसरा निर्णय सही था। सही होने का प्रमाण यह था कि उसकी रचना-शक्ति और कल्पना में वृद्धि हुई थी और उसकी प्रतिभा चमक उठी थी। एक साप्ताहिक पत्र के सम्पादक ने उसकी इस प्रतिभा का मूल्यांकन करते हुए एक लेख लिखा। अमिता की कविताओं से जो हवाले दिए, सो तो दिए साथ ही चित्र भी प्रकाशित किया।

इस लेख और चित्र के प्रकाशित होते ही कविताओं की मांग और बढ़ गई।

पत्रों में प्रकाशित होने के अलावा अमिता की कविताएं अब रेडियो से भी प्रसारित होने लगीं। रेडियो के श्रोताओं को कवि या कवयित्री के सीधा सम्पर्क में आने का जो लाभ प्राप्त है, वह पत्र के पाठकों को नहीं है। अतएव रेडियो के श्रोता अमिता की आवाज़ सुन सकते थे और

उसके नये विश्वास तथा निष्ठा का आभास पा सकते थे। खनखनाता हुआ मृदुस्वर, फिर विश्वास और निष्ठा का आभास—हल्की-हल्की रोमांटिक वेदना सोने पर सुहागा। उत्तरी भारत के कोने-कोने से प्रशंसा के पत्र आते और श्रोता अमिता की मधुर वाणी को बार-बार सुनने की इच्छा प्रकट करते।

'मैं कुछ लेखकों की गोष्ठी बुला लू?' एक दिन अमिता ने पति से पूछा।

'ठीक है। बुला लो।' योगराज ने उत्तर दिया।

अमिता चकित-सी उसके मुंह की ओर देखने लगी। वह जानती थी कि उसके पति को 'गोष्ठी' शब्द का अर्थ तक मालूम नहीं है; मगर उसने उतनी ही जल्दी और उसी ढंग से अनुमति प्रदान कर दी जितनी जल्दी और जिस ढंग से अमिता के 'बहुत दिन हो गए पिताजी को मिल आऊं?' पूछने पर की थी।

'गोष्ठी में चाय-पान भी होगा।'

'हां, हां, ठीक है। कल्याण से कह दो, वह सब इन्तजाम कर देगी।'

लाहौर में उस समय पंजाबी, हिन्दी और उर्दू भाषाओं के कहानीकार, कवि और आलोचक काफी संख्या मे मौजूद थे। उनकी साप्ताहिक गोष्ठियां होती थी। अमिता इन गोष्ठियों में आती-जाती नहीं थी; पर वह साहित्यिकों में चर्चा का विषय बनी हुई थी। कविता से शुरू होकर बात उसके रूप-रंग, शारीरिक गठन और मधुर वाणी तक जा

पहुंचती थी। इस चर्चा से अन्दाज़ा होता था कि लोग उससे मिलने और बातचीत करने के कितने इच्छुक हैं।

'मुझे आपसे एक शिकायत है।' हिकमतराय नाम के एक प्रसिद्ध कहानीकार ने, जो रेडियोपर प्रोग्राम असिस्टेंट भी था, अमिता से कहा।

'क्या ?' अमिता चौंकी।

'आप हमारी गोष्ठियों में नहीं आतीं।'

अमिता ने उत्तर नहीं दिया। वह गम्भीर हो गई। कुछ क्षण मौन के वीते। फिर उसने पलकें ऊपर उठाईं, हिकमतराय की ओर देखा और सिर हिलाते हुए वोली।

'यह शिकायत आपको मुझसे हमेशा रहेगी।'

उसका स्वर निर्णयात्मक था।

'क्यों ?' हिकमतराय ने प्रतिवाद किया। लेकिन उत्तर का इन्तज़ार किए वगैर उसने जेवसे रूमाल निकालकर ज़ोर-ज़ोर नाक सुड़की और फिर रूमाल जेव में रखकर आगे कहा, 'मिलते-जुलते रहने में क्या हर्ज है? साहित्यिक विषयों पर वहसें होती हैं, वात से वात निकलती है और फिर...' उसने फिर रूमाल निकालकर उसी तरह नाक सुड़की और उसके वाद अमिता की ओर कनखियों से देखकर मुस्कराते हुए कहा, 'मर्दों की महफिल में अगर एक औरत भी आ जाए, जिसे उर्दूवाले सिनफे-नाज़ुक कहते हैं और सही कहते हैं, तो वस फिर क्या है, फिज़ा ही वदल जाती है। इसलिए मैं चाहता हूं कि आप वाकायदा आया करें और इस मर्तवा तो आपको जरूर आना होगा।'

उसने 'ज़रूर' पर खास ज़ोर दिया। 'और ज़रूर इसलिए कि फिज़ा बदल जाए।' अमिता ने उत्तर दिया और वह आंखें फैलाकर विद्रूप भाव से मुस्कराई। हिकमतराय ने व्यंग्य की दाद दी और वह खिलखिलाकर हंस पड़ा।

'देखिए, मिलने-जुलने से तो लाभ ही होता है।'

अमिता ने इस बार गम्भीरता से कहा, 'लेकिन मेरा ख्याल है कि गोष्ठियों-वोष्ठियो में साधारण स्तर के लोग अधिक आ जाते हैं। वे साहित्यकार की मनोगत भावनाओं को तो समझते नहीं, अपनी हांकते हैं। इससे बातचीत का स्तर भी···' अमिता रुकी और अपनी स्याह पुतलियां हिलाकर बोली, 'आप समझ गए ?'

'वह तो है। वह तो है।' हिकमतराय ने रूमाल निकालकर नाक सुड़कने की क्रिया सम्पन्न करते हुए समर्थन किया। 'अच्छा', उसने रूमाल जेब में रखते हुए अमिता की ओर यों देखा जैसे उसे एकाएक कोई असाधारण और महत्त्वपूर्ण बात सूझी हो, 'आप खुद न आइए बल्कि पांच-सात चुने हुए लोगों को अपने घर पर बुलाइए।'

अमिता ने सोचा। बात उसे ठीक जान पड़ी।

'हां, यह···यह सम्भव है। ठीक है, मैं बुलाऊंगी' उसने उत्तर दिया।

दिन निश्चित हो गया और यह भी तय हो गया कि हिकमतराय परिष्कृत रुचि के चार-पांच साहित्यकारों को अपने साथ लाएगा और उनके अलावा अमिता जिसे चाहे

बुला ले।

वह जानती थी कि योगराज को इसपर कोई आपत्ति नहीं होगी और वाकई उसने कोई आपत्ति नहीं की। अमिता के बात मुंह से निकालने की देर थी कि उसने सहज में अनुमति दे दी। अगर वह पूछ लेता कि यह कैसी गोष्ठी है और इसमें कितने और किस प्रकार के लोग आएंगे तो अमिता अधिक प्रसन्न होती। पर अब वह अनुमति पाकर भी पति के बारे में सोचने लगी 'यह आदमी भी कैसा आदमी है, जिसके लिए एक निश्चित सीमा से परे दुनिया का कोई अस्तित्व ही नहीं।'

निश्चित समय पर ७-८ व्यक्ति इकट्ठे हुए। नियमित रूप से गोष्ठी नहीं हुई। लोग चाय पीते और बातें करते रहे। साहित्य, युद्ध, राजनीति, हंसी-मजाक—बातचीत का विषय सुविधा और इच्छा के अनुसार बदल रहा था।

'मित्रराष्ट्रों की शक्ति के आगे जापान अब ज्यादा नहीं टिक सकता।'

'युद्ध तो अब खत्म ही समझो।'

'अच्छा, यह बताइए। हमारे अपने देश का क्या बनेगा?'

'वाह यह भी कोई सोचने की बात है। देश का वही बनेगा जो बनना चाहिए।'

इसपर एक फरमायशी कहकहा बुलंद हुआ और साथ ही बातचीत का विषय भी बदल गया।

'अब मैं अमिताजी से अनुरोध करूंगा कि अपनी कोई

कविता सुनाएं।' अनूपचन्द नाम के एक व्यक्ति ने कहा। उसके ऊपर के दो दांत लम्बे थे और बाहर को उभरे हुए थे।

'कविता नहीं, कविताएं।' हिकमतराय ने प्रस्ताव का समर्थन किया।

'मैं चाहती हूं कि पहले हम चाय खत्म कर लें।' अमिता बोली।

'चाय तो अब खत्म है। नौकर से कहो कि प्याले-प्लेटें उठा ले जाए।'

चरतू को आवाज़ दी गई। जब वह प्लेटें-प्याले समेट ले गया तो हिकमतराय ने अमिता की ओर देखते हुए कहा—

'देखिए कविता का माहौल अब बना है। आप शुरू कीजिए।'

अमिता ने कापी उठाई। लाल, कोमल होंठों में हरकत पैदा हुई और एक समृद्ध मुस्कान से उसका चेहरा खिल उठा।

सब उसकी ओर उत्सुकता से देखने लगे और कमरे में निस्तब्धता छा गई।

उसने दो कविताएं पढ़ीं। वह पढ़ती रही और श्रोता मंत्रमुग्ध-से सुनते रहे। जब वह पढ़ चुकी तब भी वे शान्त और स्थिर बैठे उसके मधुर स्वर को ध्वनित-प्रतिध्वनित होते सुनते रहे थे। उन्हें पता ही नहीं चला कि अमिता ने कविता-पाठ बंद कर दिया है।

'वाह, क्या बात कही है!' एक छरेरे बदन के नौजवान ने, जिसका रंग गंदमी और आंखोंमें प्रतिभा की चमक थी,

खामोशी तोड़ी। उसका नाम रयाज़ दुर्रानी था और हिकमतराय के साथ रेडियो पर काम करता था। उसने सिग्रेट का एक कश लगाकर उचटती-सी नज़र सबपर डाली और बात जारी रखी, 'आप लोग शायद तरन्नुम में खो गए थे; लेकिन मैं कविता की रूह में उतरने—मानी को जेहन की गिरफ्त में लाने की कोशिश कर रहा था।' उसने फिर सिग्रेट का कश लगाया और ऊपर छत की ओर देखते हुए धुआं धीरे-धीरे बाहर छोड़ा। उसकी आखें पहले से ज़्यादा चमक उठी थीं और लगता था कि विचारों को व्यवस्थित कर रहा है। 'ईमान की बात है' वह फिर बोला, 'इधर जो हिन्दी कविता लिखी जा रही है, उसके बारे में मेरी राय अच्छी नहीं। जब भी सुनने का इत्तफ़ाक होता है तो मुझे वह भुसभुसी लगती है। लेकिन वल्लाह' अमिता की ओर देखकर 'आपने कमाल कर दिया। आपकी कविताओं में क्लासीकल रंग है। सच मानिए, जब आप पढ़ रहीं थीं तो मुझे सूरदास और मीरा याद आ रही थी।'

मीराका नाम सुनकर अमिता चौंकी, पर उसने अपने-आपको सम्भाला और अपने भीतर उठ रही गुदगुदी को दबाकर विनीत स्वर में कहा—

'लगता है कि आप मुझे बना रहे हैं। वरना मैं किस लायक हूं। मन में जो भाव उठते हैं उन्हें सीधे-सादे ढंग से बयान कर देती हूं।'

'मन के भावों को सीधे-सादे ढंग से बयान कर देना आसान नहीं।' हिकमतराय ने बात पकड़ी, और बाछों

में मुस्कराते हुए आगे कहा, 'यह बयान कर देना ही तो असल शायरी—असल कविता है।'

'हम जिसे बयान कहते हैं असल में वही कहनेवाले की शख्सीयत है।' रयाज़ दुर्रानी ने नई सिग्रेट को दियासलाई की डिब्बी पर ठोकते हुए कहा, 'खुदा की कसम, जब आप पढ़ रही थीं तो मुझे चाचा गालिब का यह शेर याद आ रहा था।

ज़िक्र उस परीवश का और फिर बयां अपना।
बन गया रकीब आखिर जो था राज़दां अपना॥'

'वाह,वाह ! क्या दाद दी है।' एकसाथ कई आवाज़ें आईं और रयाज़ ने मुस्कराकर सिग्रेट जलाई।

'अच्छा साहबान, अब हिकमतराय हमें अपनी नई कहानी सुनाएंगे।' धनूपचन्द ने ऐनक उतारते हुए तजवीज़ पेश की और फिर आगे कहा, 'आप जानते हैं कि वे भी नसर में शायरी करते हैं ?'

हिकमतराय ने कहानी पढ़नी शुरू की। शीर्षक था—एक-दो ग्यारह। बीच-बीच में ऐसे वाक्य अक्सर आते थे कि सुननेवाले 'वाह ! वाह !' कर उठते थे और फिर हिकमतराय खुद भी रुककर रूमाल में नाक सुड़कता था (एक बार उसे कहना भी पड़ा—'माफ कीजिएगा, मुझे यह एक तरह की बीमारी है।')

'वाकई यह कहानी नहीं शायरी है।' जब हिकमतराय ने पढ़ना बन्द किया तो रयाज़ ने सिग्रेट ऐशट्रे में झाड़ते हुए कहा,

'मुझे ऐसी नसर लिखना आ जाए तो मैं आज नज़्म लिखना छोड़ने को तैयार हूं।'

'यह नसर तो इन्हींपर खत्म है।' अनूपचन्द बोला।

'अच्छा साहब, इजाज़त हो तो मैं एक सवाल पूछूं!'

'हां, हां, एक नहीं, आप दो सवाल पूछिए।'

सबकी आंखें प्रदीप की ओर उठ गईं। वह कहानी और आलोचना लिखने के अलावा राजनीति में भी सक्रिय भाग लेता था और बिना किसी झेंप और तकल्लुफ के अपने मन की बात कहता था।

'कहानी का शीर्षक आपने 'एक-दो ग्यारह' बताया था।' प्रदीप बोला।

'दुरुस्त।' हिकमतराय ने उत्तर दिया।

'मैं यह जानना चाहता हूं कि इस शीर्षक का कहानी के विषय से क्या सम्बन्ध है?'

'सम्बन्ध यही है' अनूपचन्द ने ऐनक उतारते हुए झट उत्तर दिया,'कि आप यह शीर्षक सुनकर चौंके और आप-में यह जानने की उत्सुकता जागी कि इसका विषय से क्या सम्बन्ध है।' और उसने फिर ऐनक चढ़ा ली।

'क्यों साहब, क्या आपका भी यही उत्तर है?' प्रदीप ने हिकमतराय से पूछा।

'उत्सुकता जगाना भी साहित्य का बहुत बड़ा गुण है, यह तो आप भी मानेंगे।' हिकमतराय ने धीमे शान्त स्वर में कहा और फिर अमिता से मुखातिब हुआ, 'आपने देखा कि मेरी कहानी का हीरो भी आपकी कविताओं की

नायिका की तरह एक असन्तुष्ट प्राणी है और दोनों की आत्मा प्रेम की भूखी है।'

हिकमतराय इस ढंग से देख रहा था कि अमिता को उसकी आंखों में भूख साकार दिखाई दी और उसने प्रतिवाद किया—

'नहीं, नहीं। आपका हीरो लम्पट है।'

'लम्पट!' प्रदीप ने विद्रूप भाव से दोहराया और यह शब्द कमरे में गूंज उठा।

'माफ कीजिएगा' अमिता अपनी बात जल्दी में कह गई थी। अब उसकी गम्भीरता को समझकर सफाई पेश की, 'मेरा मतलब है कि आपके हीरो का जो प्रेम है उसमें वासना है और मेरी नायिका वासना से मुक्त,' वह कहना चाहती थी कि 'शुद्ध, पवित्र, निश्छल और निडर प्रेम में विश्वास रखती है' लेकिन कह नहीं पाई और रुककर बोली, 'खैर, आप समझ गए होंगे।'

'हां, मैं समझ गया,' हिकमतराय ने इत्मीनान से सिर हिलाकर कहा, 'दरअसल हमारे इस युग की विशेषता यह है कि हम लोग कोई बनावटी बात नहीं कहते। अपने-अपने अनुभूत सत्य बयान करते हैं।'

'मैं हमारे इस युग की विशेषता यह समझता हूं' प्रदीप ने शरीर ऊपर खींचते हुए दृढ़ स्वर में प्रतिवाद किया 'कि कुछ लोग अपनी विकृतियों और विकारों को ही अनुभूत सत्य मानकर उनपर गर्व करते हैं।'

अमिता ने पहले प्रदीप की ओर फिर हिकमतराय

की ओर देखा। लेकिन वह रूमाल में नाक सुड़क रहा था।

'अरे भई! इन्सानों की ज़बान में बात करो। यह कवियों और देवताओं की भाषा हमारी तो समझ में नहीं आती।'

रयाज़ ने विषय बदला और कहकहा बुलंद हुआ।

'अच्छा, अब मैं रयाज़ भाई से दरख्वास्त करता हूं कि वह अपना कलाम सुनाएं।' अनूपचन्द ने तजवीज़ पेश की।

रयाज़ ने गज़ल से हटकर मुक्तछंद कविताएं लिखनी शुरू की थीं। इसमें उसे वांछित सफलता प्राप्त हुई थी और वह अपनी बात प्रतीकों में कहने के लिए प्रसिद्ध था। उसने दो-तीन नज़्में सुनाईं और उनकी व्याख्या भी की। और जब वह सुना चुका तो हिकमतराय ने उसके कंधे पर हाथ रखकर मुस्कराते हुए कहा—

'मुझे ऐसी शायरी करना आ जाए तो तुम्हारी कसम मैं भी नस्र लिखना छोड़ने को तैयार हूं।'

अमिता ने योगराज को शरीर सौंपा था और नारी के पुरुष को शरीर सौंपने का जो परिणाम होता है वह परिणाम शादी के दो ही साल बाद सामने आ गया। वह अब एक लड़के की मां थी। लड़का उसीकी तरह गोरा-चिट्टा और गोल-मटोल था। योगराज और कल्याण इतने प्रसन्न थे जैसे उनके जीवन की सम्पूर्ण अभिलाषाएं पूरी हो गई हों। अमिता का पिता नर्मदाप्रसाद भी नाती को

देखने आया। उसने मुंह से तो कुछ नहीं कहा पर चेहरे के भाव से पता चलता था कि अपनी प्रसन्नता को व्यक्त करने के लिए उसके पास शब्द नहीं हैं। योगराज की मौसी आई और उसने आते ही कहा, 'योग, बेटे का बाप होने की बधाई। बताओ, इस खुशी में मुझे क्या दोगे?'

'मौसी, मैं भी तुम्हारा और बेटा भी तुम्हारा। तुम्हें चाहिए कि आज दोनों हाथों से मोती दान करो।' योगराज ने मुस्कराते हुए उत्तर दिया। आज उसके होंठों पर जो मुस्कराहट थी वह हमेशा जैसी कमर्शल मुस्कराहट नहीं थी बल्कि वह उसकी आत्मा में उत्पन्न हुए हर्ष और आनन्द की सूचक थी।

अमिता ने पति को इतना प्रसन्न पहली बार देखा था और पहली बार उसके मुख से एक ऐसा वाक्य सुना था जिसमें मानव-हृदय की पुट थी और कल्पना की उड़ान थी। आज उसकी आंखों में जो एक असाधारण चमक थी, यह चमक उसकी आंखों में अमिता को पत्नी के रूप में पाकर भी पैदा नहीं हुई थी। गोया शादी करने का जो उद्देश्य था, वह आज दो साल बाद पूरा हुआ था।

बच्चा अमिता को भी अच्छा लग रहा था। सबको प्रसन्न देखकर वह भी प्रसन्न होने और मुस्कराने का प्रयत्न कर रही थी। वैसे एक अकारण लज्जा से शरीर बोझल-बोझल-सा था, जिसे उसने प्रसूति-पीड़ा से आई शिथिलता समझा।

लेकिन कुछ दिन बाद जब शरीर बिलकुल स्वस्थ

था, वह मज़े से घूमती-फिरती थी, बच्चे को नहलाती-पुचकारती और दूध पिलाती थी, तब भी यह शिथिलता महसूस होती थी। कई बार वह इतना ऊब जाती कि खाने-पीने, बैठा रहने और किसीसे बात करने को जी न चाहता और वह सहसा उठकर सोफे या चारपाई पर लेट जाती। लेटे-लेटे सोचती रहती। तरह-तरह की घटनाएं और बातें मस्तिष्क में आतीं, लेकिन इस शिथिलता का रहस्य न खुलता, जो कम होने के बजाय दिन-दिन बढ़ रही थी। अलबत्ता धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट हो गई कि इस शिथिलता का कारण शारीरिक नहीं, मानसिक है।

अपनी इस मानसिक स्थिति की चर्चा वह किससे छेड़े। घर में कोई भी प्राणी उसकी भाषा समझनेवाला नहीं था। योगराज और कल्याण दो ही तो प्राणी थे। और वे दोनों अपने-आपमें मस्त थे। अमिता के लिए यह भी सम्भव नहीं था कि वह अपने को परिस्थिति के अनुकूल बना ले और इस शिथिलता को झटककर भौतिक वातावरण का भौतिक अंग बन जाए। यह वातावरण अब उसे पहले से भी ज़्यादा अजनबी जान पड़ता था, क्योंकि योगराज और कल्याण की पहले उसमें जो थोड़ी-बहुत दिलचस्पी थी, वह भी अब बच्चे में केन्द्रित हो गई थी, जिसका नाम उन्होंने 'लवली' रख छोड़ा था और जिसे देखकर भाई-बहिन दोनों की आत्माएं खिल उठती थीं।

'भाभी, लवली को यह फराक पहनाओ। देखो तो सही, इसमें वह जापानी गुड़िया-सा कैसा फबता है।'

धीरे-धीरे कल्याण ने नन्हे को नहलाने-पहनाने का काम भी अपने हाथ में ले लिया। सर्दी के दिन थे। वह नौ-दस बजे उसे धूप में लेकर बैठ जाती, उसके शरीर पर तेल की मालिश करती, पाउडर लगाती और फिर नौकर को आवाज़ देती—

'बरतू, गुनगुना पानी लाओ। मैं लवली को नहलाऊंगी।'

नहला-पहनाकर जब वह नन्हे को प्यार करती, स्नेह और ममता में भरकर बार-बार उसका मुंह चूमती तो देखनेवाले को निश्चित रूप से भ्रम होता कि वास्तव में वही उसकी मां है, लवली ने उसीकी कोख से जन्म लिया है।

कल्याण नन्हे की ज़िम्मेदारी जितना अपने ऊपर लेती गई, अमिता उतनी ही दूर हटती रही। पति, ननद और घर की दूसरी बातों की तरह उसकी बच्चे मे भी कोई दिलचस्पी नही थी। बहन-भाई ने उसके इस भाव को अवचेतन रूप से समझ लिया था। अतएव वे बच्चे की बात उससे कम और आपस में अधिक करते थे।

'भैया!' कल्याण कहती, 'लवली अब मुस्कराने लगा है और तुम्हारी तरफ मुटर-मुटर देख रहा है जैसे पहचानता हो।''

'यह अगली पन्द्रह तारीख को तीन महीने का हो जाएगा' योगराज लवली को गोद में लेते हुए उत्तर देता। फिर वह लवली के होंठों पर अंगुली रखकर गुदगुदाता,

चूमता, दुलारता और फिर उसके नन्हे-नन्हे हाथों से अपने गाल थपथपाते हुए एक अवर्णनीय आनन्दमुद्रा में खो जाता और आंखें आधी मूंदे खोया रहता।

अमिता पति को इस आनन्दातिरेक की मुद्रा में देखकर दंग रह जाती, उसके लिए पहचानना मुश्किल हो जाता। निश्चित रूप से यह वह योगराज नहीं होता था, जिसे वह हमेशा देखने की आदी थी, जो आंकड़ों में खोया रहता था और जो शरीर और मन के अन्तर को नहीं समझता था। जिस तरह कछुआ सहसा अपनी लम्बी गर्दन बाहर निकाल लेता है, योगराज के भीतर भी कोई विशिष्ट इन्द्रिय थी जो इस समय बाहर निकल आती थी।

'मैं जो चीज़ उसे देना नहीं चाहती थी, बच्चे के रूप में उसे वह भी मिल गई।' अमिता सोचती और उसका मन ईर्ष्या और ग्लानि से भर जाता। उसे गोपाल की याद आती और वह कहता हुआ जान पड़ता, 'तुम एक साधारण गृहस्थ औरत हो, जिसका काम बच्चे जनना है। बताओ तुम्हारा वह शुद्ध, पवित्र, निश्छल प्रेम क्या हुआ? क्या यह बच्चा ही वह शुद्ध, पवित्र, निश्छल प्रेम है?' उसका सिर लज्जा से झुक जाता। वह अवाक्, विमूढ और स्थिर बैठी सोचती रहती और उसके अंग-अंग में व्याप्त शिथिलता पीड़ा में बदल जाती।

जिस कारण को वह अब तक नहीं समझ पाई थी, वह सहसा स्पष्ट हो गया और तर्क के रूप में सामने आ खड़ा हुआ 'तुमने तो पति को शरीर सौंपा था; पर बच्चा

तो शरीरमात्र नहीं है। उसमें चेतना है, मन है। बताओ, बताओ वह कहां से आया ?'

चाद में कलंक की तरह बच्चा उसे अपने शुद्ध, पवित्र, निश्छल प्रेम में कलक जान पड़ता और उसका मन उपेक्षा और ग्लानि से भर उठता। 'मैं ठगी गई हूं, ठगी गई हू।' उसके मुख से आवाज़ निकलती और फिजा मे गूज उठती। वह अवश बैठी सुनती रहती। उसे लगता कि ऊंचा उड़ने के प्रयास में वह पंख-विहीन पंछी की नाई दलदल मे आ गिरी है, नीचे ही नीचे धसती चली जा रही है। उसका मन और शरीर दोनों कीचड़ मे सने हैं। दोनों मे कोई अंतर नही। भौतिक! भौतिक! भौतिक!!

मां अपने बच्चे को देखकर खिल उठती है, उसके भीतर स्नेह स्वतः उमड़ आता है। मगर अमिता लवली को देखती तो आकर्षण और वात्सल्य के बजाय उसके मन में उपेक्षा उत्पन्न होती और गोपाल ने जिस भ्रान्ति की ओर संकेत किया था, वह उसे नन्हे में साकार हो गई दिखाई देती। इसलिए वह उसे हमेशा अपने से दूर रखने का प्रयत्न करती। कल्याण अगर उसे देना भी चाहता तो न लेती और हाथ से परे धकेलकर कहती, "तुम इसे अपने पास रखो। मुझे अभी नहाना है, एक पत्र लिखना है।" या कोई ऐसा ही दूसरा बहाना कर देती। छः महीने बाद उसने नन्हे को दूध पिलाना भी छोड़ दिया क्योंकि जब वह उसे दूध पिलाने बैठती तो बहुत पीड़ा होती। लगता कि नन्हा दूध के साथ उसकी प्राण-शक्ति को—आत्माको भी पिये जा रहा हो।

अव योगराज को पति के रूप में भी स्वीकार करना उसे अपने साथ अन्याय जान पड़ता। वह जब उसे मुस्कराते देखती या बात करते सुनती तो उसका मन घृणा से भर जाता और खाना खाते समय जब वह होंठों से 'चपचप' की आवाज़ करता तो एकदम वहशी मालूम होता। अमिता मन ही मन में कहती, 'हे मेरे शरीर के स्वामी, तुम्हें दूर ही से प्रणाम !'

लेकिन जब वह अमिता के शरीर का स्वामी था तो उसे निकट आने और इस शरीर को स्पर्श करने का भी अधिकार प्राप्त था। यह अधिकार उसने बाकायदा शादी करके प्राप्त किया था। इस शादी में अमिता की इच्छा भी शामिल थी। इसलिए वह अवश थी। लेकिन योगराज के निकट आते ही क्लोरीन, आयोडीन और सल्फरडायोक्साइड आदि की दुर्गंध नाक में इतनी अधिक भर जाती कि उसके मारे अमिता का समस्त शरीर शिथिल, निश्चेष्ट और अचेत हो जाता···

जब अमिता इस मनःस्थिति में से गुज़र रही थी तो उसे एक आघात और लगा और इस आघात ने उसे प्रायः पागल बना दिया।

साम्प्रदायिक दंगे सन् १९४६ के मध्य में बंगाल से शुरू हुए, फिर धीरे-धीरे सारे देश में फैले और मार्च,

सन् १९४७ तक पंजाब भी उनकी लपेट में आ गया। हर रोज खबरें आती थी—फलां जगह बम फटा। इतने आदमी मारे गए और इतने घायल हुए। राह चलते निर्दोष व्यक्तियों पर छुरे चलने लगे। लाहौर में शायद नर्मदाप्रसाद वह पहला निर्दोष व्यक्ति था जो किसी अपरिचित व्यक्ति के छुरे का शिकार हुआ।

वह ग्वालमंडी में रहता था। बेटी से मिले और नाती को देखे दो सप्ताह से अधिक समय हो गया था। इसलिए मन व्याकुल और व्यग्र था। उस दिन वह घर पर बैठा इन्तज़ार करता रहा था। उसे योंही ख्याल हो गया था कि अमिता आज नन्हे को लेकर जरूर मिलने आएगी। लेकिन इन्तजार करते-करते शाम के पांच बज गए और अमिता नही आई। वह अधीर हो उठा और अन्त में सोचा कि चलो खुद ही जाकर मिल आएं।

वह विचार-विमग्न नाती के गोल-मटोल चेहरे का मासूम चित्र मस्तिष्क में बनाता हुआ मजग की ओर जा रहा था। लेकिन ज्योंही वह बीडन रोड पर पहुचा कि मैले-कुचैले कपड़ोंवाला कोई अपरिचित व्यक्ति तेज़ी से आया और उसके पेट में छुरा घोंपकर उतनी ही तेजी से दूसरी ओर चला गया। नर्मदाप्रसाद के मुख से एक हल्की-सी चीख निकली और वह खून में लथपथ वहीं सड़क पर गिर पड़ा।

राह चलते अपरिचित व्यक्तियो ने उसे उठाकर अस्पताल पहुंचाया। डाक्टर के दवा सुंघाने पर वह एक

बार होश में आया। लेकिन नाम और पता बताकर फिर बेहोश हो गया।

अमिता योगराज के साथ अस्पताल पहुंची तो उसने पिता की खून में सनी लाश देखी।

छुरेबाज़ी, आगज़नी, बमविस्फोट—वारदातें बढ़ती रहीं और दंगे फैलते रहे। जिस लाहौर में पहले सभी धर्मों, जातियों और सम्प्रदायों के लोग शान्तिपूर्वक रहते थे, वहां अब घर से निकलना, चलना-फिरना दूभर हो गया। योगराज मज़ंग की कोठी छोड़कर परिवार सहित मौसी के पास म्यू अस्पताल के करीब कृष्णा गली नम्बर दो में आ गया। यहां खालिस हिन्दुओं की आबादी थी, इसलिए जान और सम्पत्ति सुरक्षित थी और यहां से नीला गुम्बद दुकान पर जाने में भी विशेष खतरा नहीं था।

अमिता को पिता के मरने का जो दुःख था, वह भीतर ही भीतर नासूर बनता जा रहा था। कृष्णा गली नम्बर दो की जिस बड़ी बिल्डिंग में वे आए थे उसमें उनके पास दो ही कमरे थे, जिनमें मौसा, मौसी और उनके दो जवान लड़कों के अलावा चार-पांच प्राणी ये थे। सब घुसपैठ कर दिन बिता रहे थे। किसीको शिकायत भी नहीं थी क्योंकि पूरे प्रान्त में—देश-भर में जो भयंकर घटनाएं घट रही थीं उनके अतिरिक्त और किसी ओर ध्यान ही नहीं जाता था। जब जान के लाले पड़े हों तो स्थानाभाव की असुविधा तो दाढ-दर्द के आगे मामूली जुकाम के समान भी नहीं थी। और इतनी बड़ी घटनाओं में नर्मदाप्रसाद के मरने

की घटना मच्छर, मक्खी के मरने की घटना थी। दूसरों की तो बात ही क्या, योगराज और कल्याण भी उसे भूल चुके थे। मरे हुओं का अफसोस करने के बजाय बूढ़े, बच्चे, स्त्री और पुरुष—सब मुसलमानों को मारने और उनसे बदला लेने की बातें करते-सोचते थे। मौसा, उनके दोनों लड़के और योगराज सुबह-शाम जब घर पर होते तो यही बातें करते और गरदनें हिला-हिलाकर बड़े फख्र से कहते—'हिन्दुओं ने अपनी मेहनत और दिमाग से धन कमाया है, लाखों-करोड़ों की जायदादें बनाई हैं। साले खुल्ले[1] देखकर जलते हैं। वे समझते हैं कि हम डरकर भाग जाएंगे। उनकी ऐसी-तैसी। नहीं भागेंगे। नहीं बनने देंगे पाकिस्तान।'

अखबार आता तो वे आगज़नी और हत्याकांड की खबरें बड़ी उत्सुकता से पढ़ते और जब पता चलता कि लाहौर, अमृतसर या कहीं भी मुसलमान अधिक संख्या में मरे हैं तो बहुत खुश होते और 'मारो सालों को, मारो सालों को' कहकर मन की भड़ास निकालते। ऐसे समय उनकी आंखें लाल और चेहरे विकृत हो जाते।

उनकी बातें सुनकर और विकृत चेहरे देखकर अमिता दहल उठती। उसे ऐसा लगता जैसे उसके चारों तरफ गीदड़ और भेड़िये चीत्कार कर रहे हैं। जी में आता कि कहीं भाग जाएं। मगर कहां जाए? उसे तो इतना भी स्थान नहीं मिलता जहां अकेली बैठकर दो आंसू बहा ले

[1] मुसलमान के लिए घृणास्पद प्रयोग।

और दिल का वोझ हल्का कर ले।

जब दूसरे लोग विधर्मियों को मारने और उनसे वदला लेने की वातें करते-सोचते थे, अमिता को अपने पिता की याद आ जाती थी और खून में सनी लाश आंखों में तैरने लगती थी।

'मारने वाले, तेरा कहां भला होगा? तेरे साथ उनकी क्या दुश्मनी थी?' उसके मन में प्रश्न उठता और पिता का गम्भीर, स्निग्ध और सस्मित चेहरा नज़रों में उभर आता जैसे वह कह रहे हों, 'वेटी, मेरी उससे और उसकी मुझसे कोई दुश्मनी नहीं थी।' अमिता को यह शब्द स्पष्ट सुनाई पड़ते और वह पिता के सस्मित मुख की ओर देखते हुए सोचती, 'मरने के वाद भी उनके मन में हत्यारे के प्रति कोई द्वेपभाव नहीं।' फिर उसे उनकी कविताओं और पुस्तकों के वे अंश याद आते जिन्हें वह वड़े गर्व और चाव से वेटी को पढ़कर सुनाया करते थे। किसी भी तरह की हीनता और क्षुद्रता उन्हें पसन्द नहीं थी। मानव-मानव में भेद और धार्मिक वैमनस्य उनसे ज़रा भी सहन नहीं होता था और रूढ़िवाद की तरह वह उसपर भी कड़ा प्रहार करते थे। ये वातें वे सिर्फ लिखने ही को नहीं लिखते थे वल्कि यह उनका स्वभाव और चरित्र था। एक वार मोहल्ले की भंगिन वच्चे को गली में छोड़कर आप इधर-उधर चली गई। वच्चा रो रहा था और उसकी नाक वह रही थी। वह इतना गंदा था कि अमिता उसकी ओर देख भी नहीं सकती थी। मगर उसे

रोते देखकर पिता से न रहा गया। वह उसे उठा लाए, पुचकारा, नल पर मुंह धोया और बिस्कुट खाने को दिया। बच्चा सच्चा दुलार और सांत्वना पाकर चुप हो गया।

पिता का यह मानव-रूप अमिता की स्मृति में बहुत गहरा अंकित था। जब भी उसे पिता की याद आती तो उनका यह रूप अवश्य उभर आता और वह सोचती कि मुसलमान भी जो मर रहे है, पिताजी की तरह निर्दोष होंगे। मारनेवाले की उनसे और उनको मारनेवाले से कोई दुश्मनी नहीं होगी।

लोगों को बदला लेने की बातें करते सुनकर और उन्हें खबरों पर खुश होते देखकर अमिता के मन में यह भाव बार-बार उठता था, मगर वह किसीसे कहते झिझकती थी। जानती थी कि कोई सुनेगा नहीं और सुनेगा तो प्रतिक्रिया विपरीत होगी। इसलिए चुप रहती। लेकिन चुप रहना भी तो कठिन था। जब कोई मन की बात सुनने-समझने वाला न हो तब भी आदमी पागल हो जाता है। दरअसल इसीका नाम तन्हाई है—एकाकीपन है, जिसका दबाव सहन नहीं होता तो आदमी खाहमखाह भी चिल्लाने लगता है।

मौसी का छोटा लड़का नरेन्द्र नौजवान था, बी० ए० में पड़ता था और उसकी साहित्य और कला में भी रुचि थी। अमिता को आशा थी कि वह उसके भाव को समझ लेगा। अतएव उसे पास बिठाकर आहिस्ता से बोली—

'नरेन्द्र, मुसलमान जो मर रहे हैं क्या वे भी मेरे

पिताजी की तरह निर्दोष और भले आदमी नहीं होंगे ?'

'नहीं, मुसलमान कभी भला नहीं होता। उसे बचपन ही से ज़ालिम बनना सिखाया जाता है।' नरेन्द्र फेफड़ों की पूरी शक्ति लगाकर आवेश में बोला।

अमिता सन्न रह गई। उसने जिस पानी को निर्मल समझा था उसकी तह में कीचड़ था और वह हाथ डालते ही धुंधला गया।

वह अपने ही दुःख में घुलती रही और उसे बेहोशी के दौरे पड़ने लगे।

···आठेक साल बाद।

अमिता अब स्वतन्त्र भारत की राजधानी दिल्ली में है। न दिल्ली पहली-सी दिल्ली है और न अमिता पहली-सी अमिता है। इतने परिवर्तन आए हैं कि एक तरह दोनों का कायाकल्प हो गया है। जैसे दिल्ली की जनसख्या कई गुना बढ गई है और वह दूर-दूर तक फैल गई है, इसी तरह अमिता स्वस्थ और प्रसन्न है और उसकी सुगठित मांसल देह कुंदन की तरह दमक उठी है जैसे फिर से जवानी आई हो, उसका नया जन्म हुआ हो। फिर उसके जानने-पहचानने वालों का क्षेत्र बहुत बढ गया है। उनकी संख्या का अनुमान लगाना सहज नहीं, क्योंकि अब वह बड़ी लेखिका है और उसे देशव्यापी ख्याति प्राप्त है। इस ख्याति का कारण यह है कि देश में भी बड़े-बड़े परिवर्तन आए हैं। जैसे पुराने प्रान्तों की बजाय भाषा के आधार पर नये राज्य संगठित हुए हैं। यह दूसरी बात है कि अंग्रेज़ों के चले जाने के बाद भी अंग्रेजी का राज पूरी तरह कायम है। खद्दरधारी देशभक्त अंग्रेजी फर्राटे से बोलते हैं, अंग्रेज़ी में बोलना गौरव की बात समझते है, राजकाज का सारा काम अंग्रेजी में होता है तथा बड़े नेताओं और

अफसरों के बच्चे अंग्रेज़ी ढंग के कानवेंटों और पब्लिक स्कूलों में पढ़ते हैं। पर स्वतन्त्र भारत के संविधान में सभी प्रादेशिक भाषाओं को बराबर का दर्जा प्राप्त है और हिन्दी को राष्ट्रभाषा मानकर लिख दिया गया है कि वह सन् '६५ तक अंग्रेज़ी का स्थान ग्रहण कर लेगी। यही कारण है कि केन्द्र और राज्यों में हिन्दी और प्रादेशिक भाषाओं तथा साहित्य के विकास-विस्तार के लिए दफ्तर खुल गए हैं। रेडियो से उनके प्रोग्राम प्रसारित होने लगे हैं और फिर भारतीय लेखक केन्द्र तथा राज्यों की सरकारों द्वारा पुरस्कृत और सम्मानित तथा २६ जनवरी और १५ अगस्त के राष्ट्रीय समारोहों पर निमंत्रित होते हैं और उनकी कृतियों के अनुवाद प्रकाशित किए जाते हैं। इस रेले-पेले में जिन लेखक-लेखिकाओं ने ख्याति प्राप्त की है उनमें अमिता को एक प्रमुख स्थान प्राप्त है।

इस ख्याति को प्राप्त करने और उसे बनाए रखने की प्रक्रिया में अमिता सिर्फ बाहर ही से नहीं, भीतर से भी बहुत बदल गई है। यह भीतरी परिवर्तन क्या है और क्या है? इस बात की खोज लगाने के लिए उन प्रिय-अप्रिय घटनाओं के विवरण में जाना आवश्यक है जो परिवर्तन की इस प्रक्रिया के साथ विशेष रूप से सम्बन्धित हैं।

लाहौर में अमिता की तबीयत खराब रहने लगी, बेहोशी के दौरे बढ़ते जा रहे थे। डाक्टरों ने मशविरा दिया कि उसके मन को बहुत बड़ा आघात पहुंचा है। अगर उसे इस माहौल से दूर भेज दिया जाए तो उसकी हालत सुधर जाएगी।

अब सारे ही देश का माहौल बिगड़ा हुआ था। योगराज चिन्ता में पड़ गया कि अमिता को कहां भेजा जाए। कुछ दिन पहले उसके एक पडोसी दुकानदार ने अपने बीवी-बच्चों को नैनीताल भेजा था। उसे भी ख्याल आया कि वह भी अमिता, कल्याण और बच्चे को नैनीताल भेज दे। एक तो पहाड़ की आबहवा सेहत के लिए अच्छी थी, दूसरे यू० पी० में साम्प्रदायिक दगे नहीं भडके थे और भड़कने की सम्भावना भी कम थी।

अप्रैल के अन्तिम सप्ताह अमिता, कल्याण और लवली नैनीताल पहुंच गए। योगराज ने अपने पडोसी दुकानदार की मारफत उसके बीवी-बच्चों को लिख दिया था और उन्होंने झील के किनारे एक अच्छे होटल मे दो कमरो की व्यवस्था कर दी थी। उनकी सहायता और सुविधा के लिए नरेन्द्र भी साथ आया था। वह बीस-इक्कीस साल, लम्बे कद, भरे शरीर और गोरे रग का नौजवान था। उसके गौरवर्ण चेहरे पर छोटी-छोटी स्याह मू छे थी। जब वह मुस्कराता था तो बहुत भला लगता था। उसकी मुस्कराहट योगराज की कमर्शल मुस्कराहट से सर्वथा भिन्न थी, उसमें एक विचित्र आकर्षण और मृदुता थी। भला और

भिन्न लगने का कारण शायद यह भी रहा हो कि बीमारी के दिनों में नरेन्द्र ने अमिता की बहुत सेवा-सुश्रूषा की थी।

एक दिन जब अमिता की बेहोशी टूटी तो उसने देखा कि नरेन्द्र सिरहाने बैठा उसके हाथों पर मालिश कर रहा है। उसके चेहरे पर गम्भीरता और चिन्ताजनक आत्मीयता थी। अमिता एकटक उसकी तरफ देखती रही थी।

'बहू, अब तबीयत कैसी है?' मौसी ने पूछा। वह एक-दूसरी चारपाई पर करीब ही बैठी थी।

'अच्छी है।' अमिता ने उत्तर दिया।

'दिल तगड़ा करो। दुःख बढ़ाने से बढ़ जाता है और भुलाने से भूल भी जाता है।' मौसी ने सांत्वना दी।

'हां, भाभी!' नरेन्द्र व्यस्त स्वर में बोला, 'यों अपने प्राण मत घुलाओ। मुसीबतें भी तो इंसानों ही पर आती हैं।'

'देखा, तुम्हारे देवर को तुम्हारी चिन्ता तुम से अधिक है।' मौसी ने सस्नेह परिहास किया।

नरेन्द्र के स्वर में सचमुच हार्दिक सहानुभूति व्यक्त [illegible]। और उसके बारे में अमिता का भाव उसी दिन से [illegible] गया था।

नैनीताल में आए उन्हें पंद्रह दिन से ऊपर हो गए थे। इसी बीच में अमिता की तबीयत काफी संभल गई थी और उसे अब बेहोशी के दौरे नहीं पड़ते थे। वह अपना दुःख भुलाने के लिए यहां की चहल-पहल और मनोरम दृश्यों

से अपना मन बहलाती थी। [illegible] के [illegible]
था और वही पहले की तरह [illegible]
थी। अमिता नरेन्द्र के साथ [illegible] [illegible] थी।
इस बात से कल्याण भी खुश थी, क्योंकि वह चाहती थी
कि किसी तरह भाभी का दिल बहले और उसका रोग दूर
हो।

नरेन्द्र को नाव चलाने का बहुत शौक था। वह लाहौर में भी कालेज की बोटिंग क्लब का मेम्बर था और रावी में किश्ती चलाने जाया करता था। शाम को वे दोनों अक्सर झील पर चले जाते। नरेन्द्र जितनी देर नाव चलाता, अमिता बेंच पर बैठी, झील के नीले पानी, उसमें चल रही नावों और पहाड़ियों की ओर देखती रहती। एक-दो बार उसने भी नरेन्द्र के साथ नाव में बैठकर झील की सैर की थी। सैर में उसे आनन्द आता था, पर उसका दिल बहुत जल्द जोर-ज़ोर से धड़कने लगता था। इस ख्याल से कि कहीं फिर से दौरे न पड़ने लगें, उसने नरेन्द्र के साथ नाव में बैठना छोड़ दिया था।

जब कभी नरेन्द्र नाव न चलाता, वे इधर-उधर घूमने-टहलने निकल जाते। एक दिन वे ऊपर पहाड़ी पर बैठे झील का दृश्य देख रहे थे। मौसम अच्छा था। आसमान पर बादल छाए थे और हवा में मस्ती थी। अमिता ने रेशम की सफेद सलवार और सफेद कमीज पहनी हुई थी और एक धानी रंग का दोपट्टा छातियों और कंधों पर अल्हड़पन से डाल रखा था। रास्ते में बेला की कलियों का

एक हार भी खरीद लिया था जो उसने जूड़े में टांक लिया था। यह परिधान उसे खूब फबता था और नरेन्द्र की आंखें बार-बार उसकी ओर उठ जाती थीं; जिन्हें वह अमिता से बचाता था। लेकिन एकबार अमिता ने उसकी चोरी पकड़ ली और दोनों की आंखें चार हुईं। नरेन्द्र तनिक लजाया, पर उसने आंखें नहीं झुकाईं, बराबर उसकी ओर देखता रहा।

'भाभी, उसकी याद है न? जब तुमने मेरा हाथ पकड़कर अपने सीने पर रख लिया था और फिर एक सुख की सांस ली थी?' नरेन्द्र ने मुस्कराते हुए पूछा।

'मैंने?'

'हां, तुमने।'

अमिता को इस घटना की धुंधली-सी याद थी। एक बार जब उसे बेहोशी का दौरा टूटा और जब नरेन्द्र के सिवा पास दूसरा कोई नहीं था तो उसने अर्धचेतन अवस्था में नरेन्द्र का हाथ अपने सीने पर रख लिया था और उसे इससे राहत मिली थी।

अब उसे यह समझने में भी देर नहीं लगी कि नरेन्द्र मन में यह घटना अकस्मात् इस समय क्यों ताज़ा हो ठी। उसकी तीखी अलमस्त निगाहों ने खुद अमिता के रागात्मक वृत्तियों को जगा दिया था।

'नीचे देखो, कितना सुन्दर दृश्य है!' अमिता नेअपने ो संयत करते हुए कहा।

'हां! यहां से झील आम की गुठली की तरह दिखाई

ती है।' नरेन्द्र ने भी नीचे की ओर देखते हुए उत्तर दिया।

'आम की गुठली।' अमिता ने अपने कोमल गुर्ग होंठों से संपुट बनाया और तनिक रुककर कहा, 'इससे सुन्दर उपमा कोई दूसरी नही हो सकती ?'

'मुझे तो यही सूझी। सुन्दर उपमा तुम बताओ।'

'आंख की पुतली जैसी। क्यों ठीक है न ?' अमिता ने तनिक सोचकर कहा।

आंखें फिर चार हुई और दोनों के भीतर बिजलिया-सी कौंध गई।

अगले दिन सुबह दस बजे के करीब होटल के कमरे में वे दोनों अमिता की चारपाई पर आस-पास बैठे थे। अमिता का दाहिना हाथ नरेन्द्र ने अपने दोनों हाथों मे दबा रखा था और दोनों शान्त और मौन थे, लेकिन भीतर झकझोर आंधी चल रही थी जो क्षण-क्षण तेज होती जा रही थी।

लवली की तबीयत कुछ खराब थी। कल्याण उसे डाक्टर को दिखाने ले गई थी। कल से आकाश पर जो बादल छाए हुए थे वे छटने के बजाय गहरे होते चले गए थे, और अब एकाएक काली घटा का रूप धारण करके बरस रहे थे। अमिता और नरेन्द्र में भी जो कल शाम रागात्मक वृत्तियां जाग उठी थीं, उन्होंने रात-भर में उन्मत्त तूफान का रूप धारण कर लिया था और इसी उन्मत्त तूफान ने उन्हें एक-दूसरे के निकट एक ही चारपाई पर ला बिठाया

अब तक उनमें जो एक पवित्र सामाजिक सम्बन्ध चला रहा था उसे वे स्त्री-पुरुष के आदिम सम्बन्ध में बद- का निश्चय कर चुके थे। लेकिन इतने दिनों के संस्कार, परा और मान्यताओं ने उन्हें दुविधा और असमंजस में ल दिया था। इसीलिए वे ऊपर से शान्त और मौन थे र भीतर झकझोर आंधी चल रही थी। उनकी दशा उन रारती लड़कों जैसी थी जो बाग में फल लगे देखकर लचा जाते हैं, तोड़ने का निश्चय करते हैं; लेकिन बाग की दीवार के पास आकर, जिसपर कांच बिछी हुई है, ठिठक जाते हैं और सोचते हैं कि इसे क्योंकर पार करें।

'कल्याण कहीं रुक गई होगी।' नरेन्द्र ने मौन भंग किया।

साय, सांय ! मेह, आंधी और झक्कड़ की आवाज तेज़ हो गई। लगता था कि पहाड़, पेड़—समस्त सृष्टि आह्लाद और मस्ती में भरी अल्हड उन्माद से नाच रही है।

एक बार दीवार फाद लेने के वाद वाग में घुसना और फल तोड़ लेना एक आनन्दमय साधारण क्रीडा वन गई। वे जुलाई के अन्त तक नैनीताल मे रहे और यह समय बड़े आनन्द से वीता। पाप या अपराध की भावना कभी मन मे उठती तो अमिता उसे वरवस दवा देती थी। इसे दवा देना कुछ भी कठिन नही था। अभ्यास और तर्क से उसने अपनी संस्कारगत दुर्वलता पर कावू पा लिया था। पहले दिन इस दुर्वलता के कारण वह काफी व्यग्र और व्यथित रही थी। 'भाभी, क्या आज फिर तवीयत कुछ खराव है।' कल्याण ने उसके उदास चेहरे की ओर देखते हुए पूछा था।

'नहीं, मैं तो ठीक हू।' अमिता ने मुस्कराकर वात टाल दी थी।

लेकिन व्यथा दूर नही हुई। अपराव की भावना उसे वरावर कोंचती रही। रात को उसने स्वप्न देखा कि उसका शरीर दो भागों मे बंट गया है। आधे भाग को योगराज ने अपनी वाहों में जकड रखा है और वह उसके चगुल से छूट जाने के लिए छटपटा रही है और दूसरे आधे ... को नरेन्द्र ने अपने विशाल वक्षस्थल से चिमटा रख... उन्मत्त-सा उसकी वांहों, आंखो और होंठों को

था। अब तक उनमें जो एक पवित्र सामाजिक सम्बन्ध चला आ रहा था उसे वे स्त्री-पुरुष के आदिम सम्बन्ध में बदलने का निश्चय कर चुके थे। लेकिन इतने दिनों के संस्कार, परम्परा और मान्यताओं ने उन्हें दुविधा और असमंजस में डाल दिया था। इसीलिए वे ऊपर से शान्त और मौन थे और भीतर झकझोर आंधी चल रही थी। उनकी दशा उन शरारती लड़कों जैसी थी जो बाग में फल लगे देखकर ललचा जाते हैं, तोड़ने का निश्चय करते हैं; लेकिन बाग की दीवार के पास आकर, जिसपर कांच बिछी हुई है, ठिठक जाते हैं और सोचते हैं कि इसे क्योंकर पार करें।

'कल्याण कहीं रुक गई होगी।' नरेन्द्र ने मौन भंग किया।

'और क्या। इस मेह, आंधी और झक्कड़ में···'

अमिता ने वाक्य पूरा नहीं किया था कि घर्रऽ-घर्रऽ बिजली कड़की। धरती-आकाश कांप उठे। अमिता सहमकर नरेन्द्र से चिपट गई।

नरेन्द्र ने उसे अपनी बलिष्ठ बांहों में कस लिया और अपने प्यासे होंठ उसके कोमल मधुर होंठों पर अंकित कर दिए। लगता था कि इन सुर्ख अधरों में भरे मादक रस को, जिसे नरेन्द्र अब तक अव्यक्त कामना से देखता आया था, एकबारगी चूस लेगा और साथ ही अमिता के प्राणों को भी।

'दरवाजे, खिड़कियां सब बन्द हैं?'

'हां, बन्द हैं।'

सांय, सांय ! मेह, आंधी और झक्कड़ की आवाज़ तेज़ हो गई। लगता था कि पहाड़, पेड़—समस्त सृष्टि आह्लाद और मस्ती में भरी अल्हड़ उन्माद से नाच रही है।

एक बार दीवार फाद लेने के बाद बाग में घुसना और फल तोड़ लेना एक आनन्दमय साधारण क्रीड़ा बन गई। वे जुलाई के अन्त तक नैनीताल में रहे और यह समय बड़े आनन्द से बीता। पाप या अपराध की भावना कभी मन में उठती तो अमिता उसे बरबस दबा देती थी। इसे दबाना कुछ भी कठिन नहीं था। अभ्यास और तर्क से उसने अपनी संस्कारगत दुर्बलता पर काबू पा लिया था। पहले दिन इस दुर्बलता के कारण वह काफी व्यग्र और व्यथित रही थी। 'भाभी, क्या आज फिर तबीयत कुछ खराब है।' कल्याण ने उसके उदास चेहरे की ओर देखते हुए पूछा था।

'नहीं, मैं तो ठीक हूं।' अमिता ने मुस्कराकर बात टाल दी थी।

लेकिन व्यथा दूर नहीं हुई। अपराध की भावना उसे बराबर कोंचती रही। रात को उसने स्वप्न देखा कि उसका शरीर दो भागों में बंट गया है। आधे भाग को योगराज ने अपनी बांहों में जकड़ रखा है और वह उसके चंगुल से छूट जाने के लिए छटपटा रही है और दूसरे आधे भाग को नरेन्द्र ने अपने विशाल वक्षस्थल से चिमटा रखा है और उन्मत्त-सा उसकी बांहों, आंखों और होंठों को चूम रहा

है। आंख खुली तो दिन निकल आया था। आम तौर पर वह इससे पहले उठ बैठती थी और नरेन्द्र के साथ टहलने चली जाती थी। पर उस दिन उठने का मन नहीं हुआ। वह विस्तर पर शिथिल लेटे-लेटे अपने इस विचित्र स्वप्न पर विचार करने लगी। पहले अस्तित्व को मन और शरीर में वांटा और अब शरीर भी दो भागों में बंट गया था।

'नरेन्द्र, एक बात बताओ।'

'क्या ?'

'तुम्हें यह सब बुरा नहीं लगा ?'

'बुरा, क्या ?' नरेन्द्र ने बात समझकर भी अनजान बनने का प्रयत्न किया।

'यही, मेरे पास आना, मुझे छूना…'

नरेन्द्र एक क्षण उसके मुख की ओर देखता रहा और फिर ठहाका मारकर हंस पड़ा। अमिता सहम गई।

'भाभी, तुम पढ़ी-लिखी हो।' वह बोला, 'कविता लिखती हो और फिर भी ऐसी बातें सोचती हो। शेक्स-पियर ने कहा है, 'देयर इज़ नथिंग गुड ऐंड बैड, बट थिंकिंग मेक्स इट सो।'* और उसने अमिता का हाथ पकड़कर चूम लिया।

वे उसी पहाड़ी के उसी स्थान पर बैठे थे जहां से नीचे झांकते हुए नरेन्द्र ने झील की आम की गुठली से और अमिता ने आंख की पुतली से उपमा दी थी। अमिता की

*एक एहसास हा तो है ए दोस्त, वरना अच्छा क्या है बुरा क्या है।

रागात्मक वृत्तियां फिर जाग उठी और उसे अपना पढ़ा भी याद आया, कि शारीरिक वासनाएं तृप्त हो जाने के बाद ही मन का सुदृढ़ और स्वस्थ बने रहना सम्भव है।

उसने अपना हाथ नहीं खींचा, बल्कि नरेन्द्र की ओर देखकर मुस्कराई।

लाहौर जाना सम्भव नहीं हो सका। अमिता अब दिल्ली में रहती है। चांदनी चौक में योगराज को केमिस्ट की एक दुकान अलाट हो गई है। राजेन्द्रनगर में उनका अपना मकान है जो हाल ही में बनवाया है। मौसा-मौसी का परिवार जलंधर में है। नरेन्द्र भी वहीं है। दो साल पहले उसकी शादी हो चुकी है। उसका ध्यान आते ही अमिता को नैनीताल की याद आ जाती है। पर वह दूसरे ही क्षण उसे भुला देती है, क्योंकि वासना से अलग प्रेम नाम की अगर कोई शै है तो वह एक रोग-मात्र है और अपने मन को कोई भी रोग लगाना अमिता को अब पसन्द नहीं। किसी भूल-भ्रान्ति में न पड़कर वह अतीत और भविष्य के बजाय वर्तमान में रहती है, बल्कि उसका ख्याल है कि वह समय में नहीं, समय उसमें रहता है।

इस बीच में एक घटना और घटित हुई। घटना चाहे छोटी और मामूली है, और उसका सीधा सम्बन्ध अमिता से नहीं, कल्याण से है; मगर अमिता की वर्तमान मानसिक

स्थिति से और भीतरी परिवर्तन से उसका विशेष सम्बन्ध है।

घटना यह है कि कल्याण के इंजीनियर पति ने दूसरी शादी कर ली थी। मगर दूसरी पत्नी से कोई सन्तान नहीं हुई और न अब होने की आशा थी। इसलिए उसने कल्याण को लिवा ले जाने की इच्छा प्रकट की थी। मगर कल्याण ने इस प्रस्ताव को यह कहकर ठुकरा दिया कि जिस पति ने उसकी परवाह नहीं की, कल्याण को भी उसकी परवाह नहीं है।

जब उसने नारी के दर्प और अभिमान की इस प्रकार रक्षा की तो अमिता आश्चर्य और कौतूहल में भरी उसकी ओर देखती रह गई। कारण शायद यह हो कि उसे कल्याण से इस आचरण की आशा नहीं थी। देखते ही देखते ननद का कद उसकी नज़र में बढ़ गया और उसीके सम्बन्ध में एक और बात स्मरण हो आई।

जब वह नैनीताल में थी और सारे संशय तथा दुविधाएं मिटा कर नरेन्द्र के साथ रंगरेलियां मना रही थी तो उसके मन में शंका उत्पन्न हुई कि कहीं कल्याण उनपर सन्देह तो नहीं करती।

अपनी शंका मिटाने और ननद के दिल की थाह लेने के लिए उसने कहा था :

'बीबी, एक बात बताओगी ?'

'क्या ?'

'तुमने भी कभी किसीसे प्रेम किया है ?'

कल्याण लवली को गोद में लिए बालकोनी में बैठी

थी और दोनों नीचे सड़क की ओर देख रही थीं। अमिता के बुलाने पर कल्याण ने रुख मोड़ लिया; लेकिन लवली बदस्तूर नीचे देखता रहा।

'प्रेम!' कल्याण ने दोहराया और फिर सीधे स्वभाव यह घटना बयान कर दी कि जब वह दसवीं श्रेणी की छात्रा थी तो उसे हिसाब और अंग्रेज़ी पढ़ाने के लिए पिता ने एक ट्यूटर रख दिया था। ट्यूटर नौजवान था और कालेज का विद्यार्थी। जितनी देर वह पढ़ाता रहता, पिता पास काउच पर बैठे रहते। एक दिन बैठे-बैठे पिता की आंख लग गई और वे खर्राटे भरने लगे।

'नौजवान ने', कल्याण मुस्कराई, 'मेरे बालों पर हाथ फेरा और कहा, पहरेदार सो गये। मेरे सारे शरीर में बिजली-सी दौड़ गई और नौजवान की आखों में उस समय जो चमक थी, वह मुझे कभी नहीं भूलती।'

'बस!'

'हां, बस इतना ही।'

अमिता ननद की सरलता पर खिलखिलाकर हंस पड़ी।

'घोला!' लवली ने अपने नन्हे हाथ से कल्याण का मुंह अपनी ओर घुमाते हुए कहा। 'हा घोड़ा।' कल्याण ने नीचे सड़क की ओर देखकर समर्थन किया और फिर लवली के दोनों हाथ पकड़कर उसे दुलारते हुए कहा, 'मेरा राजा बेटा भी घोड़े पर चढ़ा करेगा 'ठुमक, ठुमक!'

इस बातचीत के बाद कल्याण के बारे में अमिता की यह धारणा बनी थी कि वह एक साधारण औरत है, जिसे

दीन-दुनिया की कोई सुध-बुध नहीं, जो अपनी छोटी-छोटी इच्छाओं और घर-गृहस्थी में खोई रहती है।

लेकिन अब जब कल्याण ने पति के प्रस्ताव को ठुकराकर नारी के दर्प और स्वाभिमान की रक्षा की, तो अमिता के मस्तिष्क में कल्याण का जो चित्र उभरा वह पहले चित्र से बिलकुल भिन्न था। इसमें वह कदाचित् साधारण और नगण्य नहीं थी, बल्कि आदर और श्रद्धा की पात्र दृढ़प्रतिज्ञ भारतीय नारी थी जो युग-युग से विद्रोह करती और अपने अधिकारों के लिए लड़ती आई है।

'अगर कल्याण पति के प्रस्ताव को ठुकरा सकती है तो मैं ही क्यों भूल-भ्रान्ति में पड़ी रहूं? क्यों ऐसे पति की परवाह करूं जिसे मैंने एक दिन भी मन से नहीं चाहा? चाह नहीं सकती।' अमिता ने मन ही मन निश्चय किया।

चरित्र-निर्माण की सभी बातें पुस्तकों में लिखी मिलती हैं। अगर उन्हें पढ़कर ही चरित्र-निर्माण सम्भव होता तो मनुष्य अपनी सारी दुर्बलताओं को त्यागकर जो कुछ वह बनना चाहता है, अब तक कभी का बन चुका होता। इसके लिए सिर्फ पढ़ लेना ही काफी नहीं है। मनुष्य संघर्ष, त्याग और तप से मनुष्य बनता है। दुःख सहकर ही उसमें आत्मबल पैदा होता है। अगर उसमें आत्मबल का अभाव हो तो वह अपने चरित्र को आदर्श के अनुरूप ढालने के बजाय आदर्श को अपने चरित्र के अनुरूप ढाल लेता है। पानी की तरह आदर्श का भी कोई रंग और आकार नहीं होता। मनुष्य उसे अपने चरित्र के जिस पात्र में डालता

है वह उसीका रंग और आकार ग्रहण कर लेता है।

अमिता ने भले ही उच्च शिक्षा प्राप्त की थी; पर पिता ने उसे लाड़-प्यार से पाला था। सुख-सुविधा में रहना और मनमरज़ी करना उसका स्वभाव बन चुका था। अपने इस स्वभाव ही से वह दुःख और कष्ट की तनिक-सी परछाईं देखकर उससे यों भागती थी जैसे बैल लाल कपड़े को देखकर भागता है। इसीलिए गोपाल से प्रेम करते हुए भी वह मानसिक उलझन में पड़ी रही, इसीलिए अपने व्यक्तित्व को शरीर और मन में अलग-अलग बांटकर अपने पहले निर्णय को बदला और योगराज से शादी की। यह एक भूल थी। और नैनीताल ही में उसने अपनी इस भूल को स्पष्ट देख लिया था।

× × ×

एक दिन वह झील के किनारे बेंच पर अकेली बैठी इधर-उधर देख रही थी कि सहसा उसकी नज़र प्रदीप पर जा पड़ी और प्रदीप ने भी उसे देख लिया।

'आप कब आए ?' अमिता ने पूछा।

'मैं आज ही आया हू और कल चला जाऊंगा।' प्रदीप ने उत्तर दिया।

अमिता प्रदीप से मिलकर बहुत खुश हुई और उसे अपने पास बेंच पर बिठा लिया। उसके दिल में बहुत-से विचार जमा हो गए थे। अब इतने दिनों बाद एक ऐसा व्यक्ति मिला था, जो उसकी भाषा और भावनाओं को समझ सकता था। वह उससे जी भरकर बातें करना चाहती थी

प्रदीप ने उसे बताया कि लाहौर में दंगे भयंकर रूप धारण कर चुके हैं। जान-माल कुछ भी सुरक्षित नहीं और लोग धड़ाधड़ शहर खाली कर रहे हैं। वह भी अपने एक मित्र के परिवार को यहां पहुंचाने आया है।

'यह सब क्या है, मनुष्य मनुष्य का हत्यारा क्यों बन गया है?' अमिता ने वही सवाल पूछा जो उसे बहुत दिनों से परेशान कर रहा था।

प्रदीप ने एक गहरी निःश्वास छोड़ी। कुछ देर वह योंही शून्य में झांकता रहा।

'दरअसल हम मनुष्य ही नहीं बने। हिन्दू, मुसलमान या सिख हैं।' वह स्वस्थ होकर बोला।

'मगर हिन्दू, सिख या मुसलमान होना पाप तो नहीं। कोई मज़हब हत्या, हिंसा और वैर तो नहीं सिखाता।' अमिता व्यस्त स्वर में बोली।

'ठीक है, हमें बताया यही गया है कि मज़हब आपस में वैर रखना नहीं सिखाता और हम जाने कब से 'हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दुस्तां हमारा' गाते-सुनते आए हैं। लेकिन हम जो कुछ हैं या थे, वह हमारा वास्तविक रूप दुनिया के सामने है।'

'फिर भी इसमें मज़हब का कोई दोष नहीं। अच्छे इन्सान हर मज़हब में मिलते हैं…' अमिता को अपने पिता की याद आई और उसका कंठ रुंध गया। वह एक क्षण रुकी और अपने-आपको संयत करके फिर बोली, 'मैं तो शिक्षा के अभाव और अंधविश्वास को इस नरमेध का

कारण समझती हूं।'

'शिक्षा !' प्रदीप ने विद्रूप भाव से दोहराया, 'आप किस शिक्षा की बात कर रही है ? आज जो शिक्षा हम लोगों को मिल रही है वह हमें शिक्षित और सभ्य कम और स्वार्थी अधिक बनाती है। यह शिक्षा हमारी संस्कारगत क्षुद्रता, क्रूरता और सकीर्णता को दूर नही कर पाती। इससे निरी तर्कबुद्धि उत्पन्न होती है। हममें जो पढे-लिखे हैं, वही ज्यादा अधविश्वासी और स्वार्थी हैं। लेकिन उन्होंने अपने स्वार्थ, अपनी क्षुद्रता और अपनी दुर्बलताओ को तर्क द्वारा ढंकना सीख लिया है···'

'नहीं, नही। यह सच है नही है।' अमिता बीच में बोल उठी। उसके चेहरे का रंग सफेद पड गया था और स्वर कांप रहा था।

प्रदीप ने न उसकी ओर देखा और न उसके स्वर पर ध्यान दिया। जिस तरह शराबी अपनी बात कहना जारी रखता है उसने भी अपनी बात जारी रखी।

'सच कैसे नही ? क्या आप यह कहना चाहती हैं कि धर्म के उपदेश सुनकर और देशभक्ति के गीत गाकर चरित्र बनता है ? नहीं, चरित्र अमल से बनता है।' वह दृढ़ स्वर में बोल रहा था और अमिता निश्चल सुन रही थी, 'व्यक्ति ही की तरह राष्ट्र का चरित्र भी संघर्ष में—क्रान्ति में उदात्त और महान बनता है। हमने अपने स्वाधीनता-संग्राम मे भी क्रान्ति-विरोधी दर्शन और क्रान्ति-विरोधी आचरण अपनाया। क्षुद्रता हमारे सामाजिक जीवन

प्रदीप ने उसे बताया कि लाहौर में दंगे भयंकर रूप धारण कर चुके हैं। जान-माल कुछ भी सुरक्षित नहीं और लोग धड़ाधड़ शहर खाली कर रहे हैं। वह भी अपने एक मित्र के परिवार को यहां पहुंचाने आया है।

'यह सब क्या है, मनुष्य मनुष्य का हत्यारा क्यों बन गया है ?' अमिता ने वही सवाल पूछा जो उसे बहुत दिनों से परेशान कर रहा था।

प्रदीप ने एक गहरी निःश्वास छोड़ी। कुछ देर वह योंही शून्य में झांकता रहा।

'दरअसल हम मनुष्य ही नहीं बने। हिन्दू, मुसलमान या सिख हैं।' वह स्वस्थ होकर बोला।

'मगर हिन्दू, सिख या मुसलमान होना पाप तो नहीं। कोई मज़हब हत्या, हिंसा और वैर तो नहीं सिखाता।' अमिता व्यस्त स्वर में बोली।

'ठीक है, हमें बताया यही गया है कि मज़हब आपस में बैर रखना नहीं सिखाता और हम जाने कब से 'हिन्दी हैं हम, वतन है हिन्दुस्तां हमारा' गाते-सुनते आए हैं। लेकिन हम जो कुछ हैं या थे, वह हमारा वास्तविक रूप दुनिया के सामने है।'

'फिर भी इसमें मज़हब का कोई दोष नहीं। अच्छे इन्सान हर मज़हब में मिलते हैं...' अमिता को अपने पिता की याद आई और उसका कंठ रुंध गया। वह एक क्षण रुकी और अपने-आपको संयत करके फिर बोली, 'मैं तो शिक्षा के अभाव और अंधविश्वास को इस नरमेध का

कारण समझती हूं।'

'शिक्षा!' प्रदीप ने विद्रूप भाव से दोहराया, 'आप किस शिक्षा की बात कर रही हैं? आज जो शिक्षा हम लोगों को मिल रही है वह हमें शिक्षित और सभ्य कम और स्वार्थी अधिक बनाती है। यह शिक्षा हमारी संस्कारगत क्षुद्रता, क्रूरता और संकीर्णता को दूर नहीं कर पाती। इससे निरी तर्कबुद्धि उत्पन्न होती है। हममें जो पढ़े-लिखे हैं, वही ज्यादा अंधविश्वासी और स्वार्थी हैं। लेकिन उन्होंने अपने स्वार्थ, अपनी क्षुद्रता और अपनी दुर्बलताओं को तर्क द्वारा ढंकना सीख लिया है...'

'नहीं, नहीं। यह सच है नहीं है।' अमिता बीच में बोल उठी। उसके चेहरे का रंग सफेद पड़ गया था और स्वर कांप रहा था।

प्रदीप ने न उसकी ओर देखा और न उसके स्वर पर ध्यान दिया। जिस तरह शराबी अपनी बात कहना जारी रखता है उसने भी अपनी बात जारी रखी।

'सच कैसे नहीं? क्या आप यह कहना चाहती हैं कि धर्म के उपदेश सुनकर और देशभक्ति के गीत गाकर चरित्र बनता है? नहीं, चरित्र श्रम से बनता है।' वह दृढ़ स्वर में बोल रहा था और अमिता निश्चल सुन रही थी, 'व्यक्ति ही की तरह राष्ट्र का चरित्र भी संघर्ष में—क्रान्ति में उदात्त और महान बनता है। हमने अपने स्वाधीनता-संग्राम में भी क्रान्ति-विरोधी दर्शन और क्रान्ति-विरोधी आचरण अपनाया। क्षुद्रता हमारे सामाजिक जीवन

का अंग वनी रही। यह सव उसीका परिणाम है।'

प्रदीप सांवले रंग और छरेरे शरीर का व्यक्ति था। अमिता उसे अपनी शादी से पहले से जानती थी। नर्मदा-प्रसाद से उसकी घनिष्ठता थी और वह उनसे मिलता रहता था। अमिता को उसके कथन में अपने पिता की तरह आत्मवल का आभास होता था इसलिए वह उसकी वातें श्रद्धा और आदर से सुनती थी।

उसके उक्त विचारों ने अमिता के भीतर हलचल मचा दी। इसके वाद उसने किसीसे कोई वात नहीं की, रात को खाना खाकर लेटी तो देर तक नींद नहीं आई। पड़ी-पड़ी करवटें वदलती और सोचती रही। आखिर उसने एक लम्वी निःश्वास छोड़ी और सस्वर कहा—'हां, मैं भी अपनी दुर्वलताओं को तर्क से ढंकती आई हूं।'

योगराज से शादी करना और नरेन्द्र के साथ रंगरेलियां मनाना आदि उस वक्त तक की सारी भूलें उसके सामने थीं। लेकिन इन भूलों के लिए पश्चत्ताप और प्रताड़ना की भावनाओं को उसने यह सोचकर वरवस दवा दिया—मेरा जीवन जिस तरह गुज़र रहा है, उसे इसी तरह गुज़रना था।

× × ×

जिस तरह उसने पिता के इस कथन को कि 'शादी तो हमने दुनिया का मुंह वन्द करने मात्र को की थी', शादी का निर्णय करते समय अपने चरित्र के अनुरूप ढाल लिया था, उसी तरह कल्याण द्वारा पति के प्रस्ताव को

ठुकराने के दृढ़ संकल्प को अपने चरित्र के अनुरूप विकृत करने में उसे देर नहीं लगी। अपने दर्प और स्वाभिमान की रक्षा के लिए हर प्रकार के बन्धनों और भूल-भ्रान्तियों से मुक्त होकर उसने हवा की तरह स्वतन्त्र जीवन बिताने का निश्चय किया।

…इस्तरी करने से कपड़े की सारी सलवटें निकल जाती हैं
और उसमें एक नई आभा और नई चमक आ जाती है
अमिता के सुगठित शरीर में जवानी की जो नई आभा है और
रूप-रंग में जो एक नया आकर्षण है उसका कारण भी यही
है कि उसने अपने मन को हर प्रकार की भूल-भ्रान्तियों,
संशयों और दुविधाओं से मुक्त कर लिया है। अपनी
वर्तमान स्थिति में उसकी धारणा यह है कि 'ज़िन्दगी जिस
तरह गुज़र रही है, इसे इसी तरह गुज़रना था।' और
यही उचित भी है। इसपर किसी प्रकार का प्रतिबन्ध
लगाना और आगे-पीछे की बात सोचकर कुढ़ते रहना
बिलकुल अस्वाभाविक है, जिससे व्यक्तित्व का ह्रास होता
है।

अब उसके अनुभव पहले से कहीं विविध और विस्तृ
हैं। उन्हें सिर्फ कविता में व्यक्त कर पाना सम्भव नहीं
इसलिए उसने गद्य में लिखना भी शुरू कर दिया है
उसकी कहानियां और उपन्यास अनूदित होकर दूस
भाषाओं में छपते रहते हैं जिससे ख्याति और आमद
दोनों में वृद्धि हुई और खुद अपनी दृष्टि में आत्म-सम्म
भी बढ़ा है।

प्रदीप भी दिल्ली में है। वह कई बार मिलने आता है। वह उसके साहित्य तथा विचारों की कड़ी और कटु आलोचना करता है। अमिता उसकी बातें पहले ही की तरह आदर और ध्यान से सुनती है। सुनकर मुस्कराती रहती है। वे उसके भीतर पहले ही की तरह हलचल भी पैदा करती है और प्रदीप के चले जाने के बाद वह देर तक अपने-आपमें खोई उनपर विचार भी करती रहती है। जिस तरह दो पत्थरों के टकराने से आग निकलती है उसी तरह विरोधी विचारों की परस्पर रगड़ से अमिता की सृजन-प्रतिभा जाग उठती है और उसे एक नई रचना के लिए उत्साह और प्रेरणा प्राप्त होती है।

उस दिन शाम के चार बजे थे। अमिता सुबह से चारपाई में पड़ी थी। उठने का मन नहीं हो रहा था कि सहसा नत्थू ने एक चिट लाकर दी। अमिता ने उस चिट को पढ़कर कहा, 'अच्छा तुम साहब को कमरे में बिठाकर चाय बनाओ, मैं अभी आती हूं।'

इससे पहले दो-चार टेलीफोन आए तो अमिता ने कहला दिया था कि मेम साहिबा घर पर नहीं। लेकिन चिट पर प्रदीप का नाम पढ़कर शरीर में प्रसन्नता और स्फूर्ति की लहर-सी दौड़ गई। वह तुरन्त उठी और थोड़ी ही देर में मुलाकाती कमरे में पहुंच गई।

'मैं तो आज कहीं नहीं गई। सुबह से चारपाई में पड़ी हूं।' अमिता ने सोफे पर बैठते ही बात शुरू की।

'तबीयत तो ठीक है ?' प्रदीप ने पूछा।

'ज़रा कमर में दर्द था।' अमिता ने हल्की-सी अंगड़ा
ली और बांहों पर हाथ फेरते हुए बोली, 'समझ लीजि
कि इस बहाने आराम कर रही थी।'

'तब तो मेरा आना ठीक ही हुआ। बेकार पड़े-प
आराम भी दर्द बन जाता है।' प्रदीप मुस्कराया अं
अमिता की समृद्ध हंसी कमरे में बिखर गई।

फिर कुछ इधर-उधर की बातें हुईं। अमिता ने प्रद
से पूछा कि आजकल वह क्या लिख-पढ़ रहा है। इ
बीच में चरतू चाय का सामान लाकर रख गया।

'मेरा उपन्यास पढ़ा ?' अमिता ने प्यालों में ची
डालते हुए उत्सुकता से पूछा।

'पढ़ा। शायद आपका यह पहला उपन्यास है।'

'हां, पहला। कहिए कैसा लगा ?'

चाय बन गई थी। प्रदीप ने बिना तकल्लुफ प्या
खुद ही अपनी तरफ सरका लिया और उसमें से एक
भरा।

'मुझे याद है।' उसने प्याला वापस मेज़ पर र
हुए कहा, 'आपने एक बार हिकमतराय के नायक
लम्पट बताया था।'

'हां, बताया था।' अमिता को लाहौर की बात य
आ गई।

'मुझे आज अफसोस के साथ कहना पड़ता है
आपके इस उपन्यास का नायक और नायिका दोनों ही'

'लम्पट हैं।' अमिता वाक्य पूरा करके हंस पड़ी,

आप यह भी कहेंगे कि मैंने विकृतियां और विकारों को अनुभूत सत्य बनाकर पेश किया है।'

'जादू वह जो सिर चढ़कर बोले। जो बात मैं कहना चाहता था वह आपने खुद ही कह ली।' प्रदीप मुस्कराया, अमिता भी मुस्कराई और फिर दोनों ने एक-एक घूंट चाय पी।

'आपने शायद कभी इस पहलू पर ध्यान नहीं दिया, लेकिन मैं चाहती हूं कि आप दें।' वह रुकी। प्रदीप ने उसकी ओर देखते हुए चाय का एक घूंट भरा। 'मेरा मतलब है', अमिता फिर बोली, 'कि जब विकार और विकृतियां जीवन की बहुत बड़ी हकीकत हैं तो इस हकीकत का बयान भी तो···'

'किसके जीवन की हकीकत?' प्रदीप ने आवेश में मेज़ पर हाथ पटका। अमिता भौंचक्की-सी रह गई और प्रदीप ने बात जारी रखी, 'उन लोगों के जीवन की हकीक़त जिनके कोई नैतिक सिद्धान्त नहीं, बल्कि यह कहना ज्यादा सही होगा कि जिन्होंने अनैतिक सिद्धान्त अपना लिए हैं।'

कई क्षण मौन के बीते।

'एक प्याला और बनाऊं।'

'बना दीजिए।'

अमिता चाय बना रही थी और मन ही मन में प्रदीप की बातों को, अपने जीवन और अपने उपन्यास के बारे में, सोच रही थी।

उपन्यास का नाम 'अंकुर' था, जिसमें उसने नाम

वदलकर नैनीताल में नरेन्द्र के साथ वीते अपने ही जीवन के अनुभव प्रस्तुत किए थे। घटनाओं में कल्पना की पुट और अतिशयोक्ति उतनी ही थी जितनी कि यथार्थ को साहित्य वनाने के लिए आवश्यक है। नायिका जो नायक से उम्र में छः-सात साल वड़ी थी, वार-वार निर्वस्त्र होती थी और जव नायक उन्मत्त-सा उसकी गर्दन, नाभि और नितम्वों आदि को चूमता था तो वह मां और प्रेयसी का मिला-जुला अद्भुत सुख महसूस करती थी…

'आज़ादी के वाद से', प्रदीप चाय का प्याला अपनी ओर सरकाते हुए फिर वोला, 'अनैतिकता हमारे राजनीतिक और सामाजिक जीवन में कोढ़ की तरह फैलती चली जा रही है। यही कारण है कि आज इस प्रकार का साहित्य…'

'हैलो !'

'हैलो !'

दो व्यक्ति भीतर आए और प्रदीप की वात वीच ही में रह गई। अमिता ने चरतू को वुलाया और उनके लिए चाय लाने का आदेश दिया।

जो दो व्यक्ति आए, उनमें एक हिकमतराय था जो आज़ादी के वाद कुछ दिन रेडियो पर काम करता रहा, पर अव प्रेस-विभाग में एक वड़े पद पर पहुंच गया था। दूसरा व्यक्ति जिसका कद लम्वा, चेहरे पर हल्की फ्रेंचकट दाढ़ी और सिर के वाल कानों से नीचे गर्दन तक फैले हुए थे, साहित्यिक क्षेत्रों में 'अगाध' के नाम से प्रसिद्ध था।

वैसे उसका एक दूसरा नाम (जिसे असली नाम भी कहा जा सकता है) सुधीर रामपाल था। कवि, आलोचक और दार्शनिक आदि सब मिलाकर उसे एक बहुत बड़ा इंटेलक्चुअल माना जाता था। अंग्रेजी और हिन्दी दोनो में उसका कलम खूब चलता था। 'अवरसेंचरी' नाम के एक अंग्रेजी अखवार मे अमिता पर उसका लेख छपा तो साहित्यकारो मे उसकी खूब चर्चा रही और बाद में वही लेख उसकी पुस्तक 'मार्डन इंडियन राईटर्स' में भी प्रकाशित हुआ। लोगों की यह आम धारणा थी कि इसी लेख के कारण अमिता को राष्ट्रीय और अंतर्राष्ट्रीय ख्याति प्राप्त हुई।

प्रदीप उन दोनों से भली भांति परिचित था। इसलिए हाथ मिलाया और बैठ गए।

'आप बता सकती हैं कि इस समय हमारे यहां आने का मकसद क्या है ?' हिकमतराय अमिता से मुखातिब हुआ।

'माफ कीजिएगा, मैं लेखक हूं ज्योतिषी नही।' अमिता ने अपने मृदु स्वर में कुछ इस ढंग से उत्तर दिया कि न सिर्फ अगाध और हिकमतराय ही वल्कि प्रदीप भी हंस पड़ा।

'हम आपको उपन्यास की बधाई देने आए हैं।

'धन्यवाद !'

'सिर्फ धन्यवाद से काम नही चलेगा। इस खुशी आपको हमे दावत खिलानी होगी।'

'और आज ही' अगाध ने धीमे स्वर में, पर विशेष ज़ोर देकर कहा।

'दावत खिलाने से तो मैंने पहले भी कभी इनकार नहीं किया।' अमिता बोली।

'लेकिन दावत-दावत में भी फर्क होता है।' हिकमत-राय अर्थपूर्ण ढंग से मुस्कराया और रूमाल निकालकर नाक सुड़कने लगा।

'आपका उपन्यास पढ़कर,' अगाध ने दार्शनिक पोज़ बनाकर बात शुरू की, 'मुझपर जो प्रतिक्रिया हुई उस बारे में मैं विस्तार से लिखूंगा। इस समय कुछ बातें संक्षेप में कह दी जाएं तो मेरे ख्याल में कोई हर्ज़ नहीं ?'

'हर्ज़ क्या होगा ? आप ज़रूर कहिए।' अमिता बोली।

'आपसे कोई खास बात तो नहीं हो रही थी।' अगाध ने प्रदीप की ओर संकेत करके कहा और सिग्रेट जलाकर तीली ऐश-ट्रे में बुझा दी।

'हम उपन्यास ही की बात कर रहे थे। अच्छा है कि अब आपके विचार भी मालूम हो जाएंगे। आप कहिए।' प्रदीप बोला।

'पहली बात तो मुझे यह कहनी है' अगाध ने कश लगाकर धुआं छत की ओर छोड़ा और बात जारी रखी 'कि इस उपन्यास में जीवन की शाश्वत अभ्यंतरता अपने विशुद्ध सूक्ष्म रूप में व्यक्त हो पाई है।'

'आपने यह क्या शब्द इस्तेमाल किया ?'

'शाश्वत अभ्यंतरता !' प्रदीप ने उसे टोका।

'हां, शाश्वत अभ्यंतरता ही हमारी सृजन शक्ति है।' अगाध ने सिग्रेट को ऐश-ट्रे में झाड़ते हुए धीरे-धीरे कहा, 'यह हलचल के महान क्षणों में सक्रिय होती है और फिर हम ऐसे काम कर गुज़रते हैं जो हमारी अतिमानवीय शक्ति के परिचायक होते हैं।'

'बिलकुल सही। जब तक आदमी हलचल के क्षणों में से न गुज़रे ऐसी चीज़ लिखी ही नहीं जा सकती। लिखना असम्भव है।' हिकमतराय ने एक-एक शब्द पर ज़ोर देते हुए कहा।

'मैं अपनी बात और स्पष्ट कर दूं।' अगाध ने दाईं कोहनी सोफा कुर्सी के बाज़ू पर टेककर पोज़ बदला, 'हमारे कन्वेंशनल जीवन की जो सामान्य घटनाएं होती हैं उनका सम्बन्ध मस्तिष्क से है, जो हमारे जादूई व्यक्तित्व को अपनी पेटारी में बन्द रखता है। मस्तिष्क मनुष्य ही में नहीं, हीनतम पशु और पक्षियों में भी होता है। यह पूर्णतः भौतिक है और अतरिक्ष मे सक्रिय रहता है। आप यों समझ लीजिए कि मस्तिष्क एक यन्त्र है जो घटनाओं का लेखा-जोखा रखता है। लेकिन ये घटनाएं जीवन की सच्ची वास्तविकता नहीं। सच्ची वास्तविकता इंद्रियातीत है।'

'इंद्रियातीत।' प्रदीप ने उसे टोका।

'जी हां, सच्ची वास्तविकता इंद्रियातीत है। मस्तिष्क की चूंकि उस तक पहुंच नही, इसलिए वह सृजन-कार्य में असमर्थ है। मस्तिष्क में मनुष्य की आभ्यंतरिक श्रेष्ठता नही होती।'

'आपके कथनानुसार जो इंद्रियातीत सच्ची वास्तविकता है, मेरे ख्याल में उसे वास्तविकता की वजाय ईश्वरीयज्ञान या इल्हाम कहना उचित होगा।' प्रदीप ने तर्क प्रस्तुत किया और अमिता अगाध की ओर देखकर मुस्कराई।

'नहीं।' अगाध ने प्रतिवाद किया, 'अतीत, वर्तमान और भविष्य का जो निरन्तर विकास है, उसीके सारतत्व का नाम सच्ची वास्तविकता है। विकास अन्तरिक्ष की नहीं, समय की देन है। उसका सम्बन्ध हमारे अहम् से है। अहम् ही चीज़ों की गुणात्मकता को समझता है और उसके वारे में तर्क सम्भव नहीं।' अगाध ने सिग्रेट का कश लगाया और वह धुआं धीरे-धीरे छत की ओर छोड़ने लगा।

प्रदीप कुछ कहना चाहता था। लेकिन अगाध ने उसे हाथ के इशारे से रोक दिया, जिसका मतलव था कि उसकी वात अभी पूरी नहीं हुई।

'अमिता की सम्पूर्ण वास्तविकता', उसने वात शुरू की। हिकमतराय उसकी और अमिता की ओर कनखियों से देखकर मुस्कराया, 'उन्हींके उपन्यास की वात हो रही है, इसलिए उन्हीं का उदाहरण दे रहा हूं।'

'मेरे मुस्कराने का मतलव भी यही था।' हिकमत-राय ने वात में वात मिलाई और रूमाल नाक पर रखा।

'तो हां, मैं कह रहा था कि अमिता की सम्पूर्ण वास्तविकता उनके सतत विकास में निहित है। और इसे अपने जीवन के प्रत्येक क्षण में सिर्फ अमिता ही ने अनुभव किया है। इसे उनकी सृजन-चेतना ही समझ सकती है।'

'और इस सृजन-चेतना का मस्तिष्क से कोई सम्बन्ध नहीं ?' प्रदीप ने प्रश्न किया।

'नहीं। जैसा कि मैं पहले कह चुका हूं मस्तिष्क भौतिक है, एक यंत्र-मात्र है और सृजन करने में असमर्थ है। अगाध ने दृढ़ और गम्भीर स्वर में उत्तर दिया और बात जारी रखी, 'कालिदास का मेघदूत और जर्मन कवि गेटे का फाऊस्ट, मस्तिष्क का कार्य नहीं। कला और प्रकृति की महान कृतियों को जिनमें महानतम कलाकृति स्वयं मनुष्य है, मस्तिष्क द्वारा नहीं, आभ्यंतरिक चेतना द्वारा ही समझा जा सकता है।'

'तो यह आभ्यंतरिक चेतना कहां रहती है ?'

'शरीर के भीतर। मन में।'

'इसका मतलब यह हुआ कि आपके नजदीक मन अभौतिक है और मस्तिष्क से अलग है।'

'बिलकुल।' अगाध ने उत्तर दिया।

प्रदीप विद्रूप भाव से मुस्कराया और चुप रहा।

'आप भी तो बताइए कि मन, मस्तिष्क और शरीर के बारे में आपका क्या मत है ?' अमिता बोली। उसे गोपाल की बात याद आ गई थी।

'विज्ञान का मत ही मेरा मत है।' प्रदीप ने संयत और गम्भीर स्वर में बात शुरू की, 'विज्ञान मन को मस्तिष्क से अलग नहीं मानता। यह ठीक है कि शरीर : मस्तिष्क का एक भौतिक रूप और आकार है। इस मस्तिष्क की जो चिंतन-सक्रियता है, उसमें जो विचार और कल्पना.

की सूक्ष्म लहरें उठती हैं, उसीका नाम मन है। यों भौतिक शरीर और भौतिक मस्तिष्क से अलग मन का अपना कोई अस्तित्व नहीं।'

कुछ क्षण मौन के बीते। अगाध ने सिग्रेट ऐश-ट्रे में बुझा दिया। फिर हाथ घुटनों पर रखकर शरीर तनिक आगे को झुकाया और बात शुरू की।

'आधुनिक दर्शन ने विज्ञान के इस विकल्प का खंडन किया है। मन और मस्तिष्क को एक मानना ही वैज्ञानिकों की सबसे बड़ी भूल है। इसी भूल के परिणामस्वरूप वह शरीर के अंत को जीवन का अंत मान लेते हैं। दरअसल हमारा यह भौतिक शरीर जीवन नहीं, बल्कि आभ्यंतरिक चेतना की विकासात्मक उन्नति—युगों-युगों की उन्नति; सूक्ष्म तत्त्व का नाम जीवन है। यही प्रेरक शक्ति है। बर्गसां ने इसका नाम 'वाईटल स्पार्क (Vital spark) अर्थात् ज्वलन्त चिनगारी रखा है। यह समय की तरह अमर है। इस दर्शन ने समय को अंतरिक्ष की कैद से आज़ाद कर दिया है...'

'लेकिन...लेकिन आईंस्टीन के सापेक्षता सिद्धान्त का आधार ही समय और अंतरिक्ष के सम्बन्ध को सिद्ध करना है।' प्रदीप ने उसकी बात काटी।

'आईंस्टीन का सापेक्षता सिद्धान्त एक ऐसा गोरख-धंधा है जिसे शायद खुद आईंस्टीन ने भी नहीं समझा' हिकमतराय ने कहा और वह आप ही हंस पड़ा।

'समय अनन्त ही नहीं आंतरिक भी है, क्योंकि मनुष्य

समय में नहीं, समय मनुष्य में रहता है।' अगाध ने वहीं से बात शुरू की जहां से प्रदीप ने उसे टोका था।

'मनुष्य समय का पाबन्द नहीं, वह उसकी आत्मा का स्वामी, उसका विधाता है और समय मनुष्य की सृजन-प्रतिभा में रहता है। संक्षेप में यों समझ लीजिए कि समय उसी प्रकार मन का जीवन है जैसे विकास शरीर का जीवन है।"

'हियर ! हियर !' हिकमतराय ने 'सभ्य' ढंग से हल्की-सी ताली बजाई।

'प्रत्येक जीवंत क्षण अनन्त है, बशर्ते कि हम अपने-आपको भौतिक वातावरण के मानसिक बंधनों से मुक्त कर लें।' अगाध अपनी बात बड़े इत्मीनान से कह रहा था, जैसे किसी बहुत बड़े सत्य का उद्घाटन कर रहा हो, 'बंधनों से मुक्त होने के लिए ही प्रबुद्ध व्यक्ति की आत्मा निरन्तर विद्रोह करती यानी हड़कम्प मचाती है।'

'इस विद्रोह की दिशा क्या है ?' प्रदीप ने प्रश्न किया।

'दिशा-विशा कुछ नहीं। यह महज राजनीतिक नारा है।' अगाध ने उत्तर दिया और आगे कहा। 'अगर दिशा ही की बात करनी हो तो यों समझ लीजिए कि आज़ादी से पहले जितने उपन्यास लिखे गए हैं वे महज राजनीतिक प्रचार-मात्र हैं, सोशल डाकूमेंट हैं। आज़ादी के बाद हमने हलचल के महान क्षणों की सच्ची वास्तविकता को—शाश्वत अभ्यंतरता को व्यक्त करना शुरू किया है। और आपका यह उपन्यास', उसने अमिता की

ओर संकेत किया, 'इस दिशा में एक सफल प्रयास है।'

'लेकिन यह उन्नति की नहीं, पतन की दिशा है।'

'मिस्टर प्रदीप, आपमें और हममें यही बुनियादी मतभेद है। आप आर्थिक मांगों के लिए विद्रोह और संघर्ष करते रहने ही को उन्नति समझते हैं। और हम समाज ने नैतिकता-अनैतिकता के नाम पर जो भ्रम फैला रखे हैं, मनुष्य को उनसे मुक्त करने को उन्नति मानते हैं।'

'और यह मतभेद हमेशा रहा है और आगे भी रहेगा।' हिकमतराय ने अंतिम निर्णय के तौर पर कहा और रूमाल नाक पर रखा।

रात के लगभग दो बजे थे। योगराज अमिता का इन्तज़ार कर रहा था और ज़रा-सी आहट पाकर चौंक उठता था। उसे नींद नहीं आ रही थी। अमिता नौकर से कह गई थी कि वह खाना घर पर नहीं खाएगी और वह अगाध और हिकमतराय के साथ चली गई थी। वह पहले भी कई बार घूमने चली जाती थी, खाना भी घर पर नहीं खाती थी; लेकिन रात के ग्यारह या बारह बजे तक लौट आती थी। उसने इतनी देर पहले कभी नहीं की थी। आज वह अब तक नहीं लौटी और मालूम भी नहीं था कि कहां गई है; इसलिए योगराज चिन्तित था और इन्तज़ार कर रहा था।

आखिर एक टैक्सी घर के सामने आकर रुकी। योगराज ने उठकर दरवाज़ा खोला और अमिता लड़-

खड़ाते कदमों से भीतर आई। उसकी आंखें नशे से चढ़ी हुई थीं।

'वेश्या!' योगराज ने अपने मन का सारा आक्रोश एक शब्द में व्यक्त किया।

अमिता एक क्षण चुप खड़ी पति के मुख की ओर देखती रही।

'तुम्हारी पत्नी कहलाने की बजाय मैं वेश्या कहलाना गर्व की बात समझती हूं।' अमिता ने उत्तर दिया और कहा, 'थू!'

योगराज एक कदम पीछे हट गया। अमिता अपने स्थान पर अचल और स्थिर खड़ी रही। दोनों एक-दूसरे की ओर घृणा से देख रहे थे। यह घृणा उनके भीतर जाने कब से एकत्रित हो रही थी और आज अपने भयंकरतम रूप में फूट पड़ी थी।

'घर की इज़्ज़त का ज़रा भी ख्याल नहीं।'

'इज़्ज़त!' अमिता ने विद्रूप भरा ठहाका लगाया जो रात के सन्नाटे में गूंज उठा लेकिन सब पड़े सो रहे थे। योगराज के सिवा किसी ने उसे नहीं सुना और यह उसके शरीर में से बिजली के करंट की तरह निकल गया, 'तुम्हारी इस नकली इज़्ज़त के मारे ही तो मैं इस चिड़ियाघर में बन्द हूं।'

योगराज सहम गया। उसकी ज़बान बन्द हो गई। वह अपनी तरफ से पत्नी पर नाराज था। लेकिन पत्नी उसपर कितनी नाराज है, यह उसे मालूम ही नहीं था।

'तुम इतने पर भी खुश नहीं तो कहो, मैं कहीं चली जाऊं ?' अमिता फिर बोली।

'ठीक है। जो तुम्हारे जी में आए, करो।' योगराज ने कहा और वह अपने विस्तर की ओर बढ़ चला। लड़ना-झगड़ना और वात बढ़ाना उसका स्वभाव नहीं था। वह शान्ति से रहना चाहता था।

अमिता ने कपड़े नहीं वदले। जैसे घर लौटी थी, उसी तरह लेट गई और उसे लेटते ही नींद आ गई।

सुवह उठकर योगराज ने अमिता से कोई वात नहीं की, वल्कि नज़र उठाकर उसकी तरफ देखा तक नहीं। वह हमेशा की तरह नहाया-धोया और चुपचाप नाश्ता करके दुकान पर चला गया। रात की घटना की उसपर क्या प्रतिक्रिया हुई और वह अपने मन में क्या सोच रहा था, चेहरे से इसका अनुमान लगाना सम्भव नहीं था। वह पहले की तरह रूखा-रूखा और भाव-शून्य था।

अमिता भी चुप थी। लेकिन उसका निचला होंठ ज़रा आगे को बढ़ा हुआ था और आंखों में विद्रूप चमक थी। रात की घटना की वजाय वह योगराज की चुप्पी से ज़्यादा विक्षुव्ध थी और सोच रही थी, 'यह शख्स मुझे वेश्या कहे।'

योगराज के चले जाने के वाद उसने स्नान किया और कपड़े वदले। वह वरामदे में वैठी कंघी कर रही थी। अचानक उसकी नज़र पीछे गई तो देखा कि चरतू कुत्सित दृष्टि से उसकी ओर देख रहा है।

मालकिन की नज़र पड़ते ही चरतू फौरन वहां से हट गया। मगर अमिता के हाथ की कंघी जहां थी वही रह गई। उसे अपने भीतर जलन-सी महसूस हुई, जैसे कोई गर्मशै शरीर को छू गई हो। चरतू जो इतना भोला-भाला और विमूढ़-सा व्यक्ति था वह भी उसे कुत्सित दृष्टि से देख रहा था, जैसे उसने मालिक को 'वेश्या' कहते सुन लिया हो।

लेकिन यह सिर्फ उसी दिन की वात नही थी। अमिता को याद आया कि चरतू का रवैया पिछले वहुत दिनों से वदला हुआ था। ऊपर से वह पहले की तरह शिष्ट, विनम्र और आज्ञाकारी वना हुआ था और अमिता के हर आदेश का सादर पालन करता था, लेकिन एक अस्पष्ट, अवूझ कुत्सित भावना उसके समूचे आचरण से व्यक्त होती थी और जब वह वुलाने पर, 'आया, वीवीजी' कहता था तो वह स्वर मे व्यक्त होती थी।

अमिता सब देखती और महसूस करती थी। उसे मालूम था कि चरतू जो शिष्टता और विनम्रता दिखाता है वह सब वनावटी है। अगर उसका वश चले तो वह उसी अशिष्टता और उद्दंडता का परिचय दे जिसका रात अमिता ने दिया था। घृणा और अनादर ही उसकी सच्ची वास्तविकता थी जिसे वह अपने भीतर वन्द किए खोल में सिमटा रहता था।

लेकिन एतराज़ तो क्या करना था, अमिता ने इसे महसूस करना भी छोड़ दिया। वल्कि यों कहना ज्यादा

सहोहोगा कि धीरे-धीरे महसूस होना ही छूट गया। कारण जिस ऊंचे समाज में वह घूमती-फिरती थी और जिन लोगों को वह सभ्य, शिक्षित, बड़े नेता तथा लेखक समझती थी, उनका आचरण भी चरतू के आचरण से भिन्न नहीं था। सबके सब नकली शिष्टता और विनम्रता के खोल में बन्द थे।

उदाहरण के लिए हिकमतराय अगाध को आता देखकर आदर से झट उठ खड़ा होता था, शिष्टता और विनम्रता से उसका स्वागत करता था और दूसरे लोगों के सामने उसकी प्रशंसा के पुल बांध देता था, लेकिन अमिता के सामने इसी अगाध को उसकी अनुपस्थिति में इसी हिकमतराय ने अवज्ञा और घृणा से मुंह बनाकर 'साला, एक नम्बर फ्राड है' भी कई मर्तबा कहा था।

फिर 'भ्रष्टाचार-उन्मूलन-संघ' के जलसे की बात अमिता को कभी नहीं भूलती। दयावती सहगल के आग्रह पर वह भी इस जलसे में चली गई थी। दयावती सहगल का उच्च शासकवर्ग में बड़ा प्रभाव था। उसके ज़रिए लोगों के बड़े-बड़े काम निकलते थे। योगराज को चांदनी चौक की दुकान भी उसीकी सिफारिश से अलाट हुई थी। इसलिए अमिता भ्रष्टाचार-उन्मूलन में कोई दिलचस्पी न होते हुए भी उसकी बात टाल न सकी।

श्रीमान 'च' जलसे के मुख्य वक्ता थे। सबकी आंखें उन पर केंद्रित थीं। लोग हाथ बांधे श्रद्धाभाव से उनके दाएं-बाएं मंडरा रहे थे। वे न सिर्फ एक बड़े नेता थे बल्कि उच्च

पदाधिकारी भी थे। भाषण शुरू होने से पहले महोदय श्री बलवन्तराय पालीवाल ने गद्गद कंठ से उनकी देशसेवाओं और जनसेवाओं की चर्चा करते हुए उन्हें त्यागमूर्ति और भारतीय संस्कृति के प्रतीक आदि जाने क्या-क्या बताया। भाषण ठाट से हुआ, लोगों ने ध्यान से सुना और बीच-बीच में तालियां भी बजाई।

'आपको श्रीमान 'च' का सहयोग और संरक्षण प्राप्त हो गया। अब भ्रष्टाचार समाप्त समझो।' दयावती सहगल ने संयोजक को जलसे की सफलता पर बधाई देते हुए कहा। 'धूर्त कहीं के! ये लोग भ्रष्टाचार दूर करेंगे जो खुद सबसे बड़े भ्रष्टाचारी हैं।' संयोजक ने विद्रूप भाव से मुंह बनाकर बधाई स्वीकार की। दयावती हंसने लगी।

अमिता जहां भी जाती थी, नकली चेहरे देखने को मिलते थे और मिथ्या बातें कान में पड़ती थी और सत्कारमय मुस्कराहटों के नीचे विकट घृणा छिपी रहती थी। उसे अपना आदर-सम्मान भी मिथ्या और नकली जान पड़ता था। कई बार जी में आती कि कपड़े फाड़ डाले, शरीर तथा आत्मा पर पाखंड और विडम्बना की जो मोटी तह जम गई है उसे नोच फेंके और नंगे नाचे।

उसका बेटा लवली से बलराज बन गया था। प्यार में वे उसे 'बिल्लू' भी कह देते थे। कल्याण को चूंकि अमिता और चरतू 'बीबीजी' कहकर पुकारते थे, इसलिए बिल्लू ने जब से बोलना सीखा, वह भी उसे 'बीबीजी' कहता था। वह न सिर्फ 'बीबीजी' कहता था, बल्कि कल्याण को मां की

तरह प्यार भी करता था और नौ-दस साल का होकर भी एक नन्हे बच्चे की तरह उसकी गोद में सिर रख देता था।

पाखंड और विडम्वना होशियार और चालाक वनने-वाले वड़े लोगों की नज़र से भले ही ओझल हो जाए, मगर वच्चे की निर्मल दृष्टि उसे झट पहचान लेती है। अतएव विल्लू चाहे अमिता से अपने सम्वन्ध को अव भलीभांति समझता था और कहने को उसे 'मम्मी' कहता था लेकिन अगर अमिता कभी भूले-भटके प्यार से उसे पुचकारती थी तो वह अवज्ञा भाव से मुंह दूसरी ओर फेर लेता था।

'वीवी, क्या तुम भी मुझसे घृणा करती हो ?' विल्लू के यों मुंह फेर लेने पर अमिता ने एक दिन कल्याण से पूछा।

'भाभी, तुम्हारा धर्म तुम्हारे साथ और मेरा धर्म मेरे साथ है। घृणा, चुगली और निन्दा मेरा काम नहीं।'

अमिता ने देखा कि वह कल्याण को जितनी सीधी और सरल समझती आई है, दरअसल वह उतनी ही गहरी और पेचीदा है। इस उत्तर का अर्थ यह हुआ कि वह अमिता को घृणा करने के योग्य भी नहीं समझती। यह घृणा न करना घृणा करने से ज़्यादा तकलीफदेह था। अमिता अव उससे वात करते भी झपती थी।

घर में चूंकि वह किसीसे भी अपना सामाजिक सम्वन्ध स्थापित नहीं कर पाई थी, इसलिए अमिता वहां एक अजनवी की तरह रहती थी और अजनवीयत दिन-दिन वढ़ रही थी। इसलिए उसने आज घर को अनायास 'चिड़ियाघर' कह दिया था।

…छः-सात साल और यों ही गुज़र गए।

अमिता की उम्र इस समय चालीस से ऊपर है और जवानी ढल रही है। पर अमिता का इस ओर ज़रा भी ध्यान नहीं जाता। ध्यान जाने का सवाल ही पैदा नहीं होता, क्योंकि वह कोई व्यक्ति-विशेष नहीं, अतीत और वर्तमान के विकास का सारतत्त्व है जो प्रतिक्षण भविष्य को विरासत मे मिल रहा है। वह समय में नही रहती, समय उसमें रहता है। इसलिए उसके अस्तित्व को तिथियों में नहीं बांटा जा सकता। बेटी, बहन, मां या पत्नी आदि के सम्बन्ध भी उसके लिए गौण है। आदिम युग से जो शुद्ध स्वच्छंद नारीरूप उसे मिला है अमिता अपने आचरण से उसी नारी रूप को सार्थक बना रही है।

कविताओं और कहानियों के अलावा इस बीच में उसके पांच उपन्यास छप चुके हैं। 'शाश्वत अभ्यंतरता' ही हर एक उपन्यास का मुख्य विषय है, सिर्फ माहौल और पात्र बदलते रहते हैं। कभी प्रेम जीवन का उद्देश्य था; लेकिन अब महान जीवंत क्षणों की हलचल को साहित्य में चित्रित करना—उसे सजीव और सप्राण बनाना ही जीवन का उद्देश्य बन चुका है; इसलिए उपन्यास में पात्रों

के साथ-साथ अमिता के मित्र भी वदलते रहते हैं।

अगाव से उसकी घनिष्ठता किसीसे छिपी नहीं थी और उसे छिपाना खुद अमिता चरित्र की दुर्बलता समझती थी। लेकिन एम० आर० ए० (मोरल री-आर्मामेंट आर्मी) नाम की अन्तर्राष्ट्रीय संस्था ने पतनोन्मुख मानवता को नैतिकता से सशस्त्र करने के लिए मिशन पर अगाध को पहले पश्चिमी योरूप के देशों में भेजा और वहां से लौटा, तो वह दक्षिण-पूर्वी एशिया के दौरे पर चला गया। उसके बाद अमिता के जीवन में कई व्यक्ति आए और चले गए। पर उसकी वर्तमान नई मित्रता जो डेढ़-दो साल से बराबर चल रही थी, राजधानी में चर्चा का विषय बनी हुई थी। और फिर इससे पहले कि यह चर्चा समाप्त हो, अपनी इस मित्रता के आधार पर वह खुद चर्चा का विषय बन गई।

'अमिता का किस्सा सुना ?'

'नहीं तो। बताओ !'

'वह सुरेश के साथ घर से भाग गई।'

'भाग गई ! कहां ?'

'उसे लेकर बम्बई चली गई।'

'बम्बई चली गई ?'

'उन्हें गए दो महीने से ज़्यादा हो गए और तुम्हें पता ही नहीं चला ?'

'मगर उसने यह क्यों किया ?'

'क्यों किया यह वह जाने; लेकिन जो किया वह तुम्हें बता दिया।'

इस क्यों का उत्तर कुछ लोगों ने यह दिया कि सुरेश के मां-बाप उसकी शादी करना चाहते थे। लेकिन सुरेश को अमिता से इश्क था। उसने अपने इस इश्क की खातिर शादी को ठुकरा दिया और वे दोनों बम्बई चले गए।

, सुरेश के बारे में शायद यही बात सही हो। लेकिन इस सम्बन्ध में दूसरा प्रश्न यह उठता था कि अमिता ने उसके साथ जाना क्यों स्वीकार किया। वह जब चाहे मित्र बदल सकती थी और बदलती रहती थी। यहा भी उस पर कोई रोक-टोक नही थी। योगराज ने यह सोचकर कि 'जैसी चल रही है, ठीक है।' सहास्तित्व का नियम अपना लिया था। फिर अमिता क्यों घर से भागी ? क्यो चर्चा का विषय बनी ?

इस क्यों का सम्बन्ध अमिता की सम्पूर्ण वास्तविकता से था और इसे सिर्फ अमिता ही समझ सकती थी और अमिता ने इसे समझकर ही घर से भाग जाने का यह साहसी कदम उठाया था।

सुरेश लम्बूतरे चेहरे और सुगठित शरीर का सुन्दर नौजवान था। उसकी उम्र पच्चीस-छब्बीस साल थी। उसे देखकर अमिता को नरेन्द्र की और नैनीताल की याद आ जाती थी। सुरेश जब उसके विभिन्न अंगों का चुम्बन करता था तो अमिता को वही मा और प्रेयसी के मिले-जुले अद्भुत सुख का अनुभव होता था, आत्मा खिल उठती थी और समस्त शरीर में स्फूर्ति की एक अमर तरंग-सी

दौड़ जाती थी। इसलिए वह सुरेश की मित्रता को जो उम्र में उससे चौदह-पंद्रह साल छोटा था किसी दूसरेपुरुष की मित्रता से बदलना नहीं चाहती थी।

लेकिन एक ही जगह रहते-रहते उनके इस नवीन सम्बन्ध में भी धीरे-धीरे शिथिलता और एकरसता आ रही थी। अमिता ने एक दिन इसे बुरी तरह महसूस किया और वह इसका अंजाम सोचकर चौंक पड़ी।

'ज़िन्दगी बोर होती जा रही है।' उसने आंखें सुरेश पर गड़ाकर कहा, जैसे उसे अपनी आत्मा में झांकने को कह रही हो।

'बोरडम तो मैं भी महसूस कर रहा हूं। पर क्या किया जाए?'

'जी चाहता है यहां से कहीं भाग चलें, दूर—बहुत दूर!'

'भला कहां?'

'सोचती हूं कि बम्बई चलें। तुम फिल्मों में अभिनय किया करना और मैं कहानियां और गीत लिखा करूंगी।'

सुरेश एक कलाकार था। नई दिल्ली में जो नाटक खेले जाते थे उनमें वह आम तौर पर नायक की भूमिका अदा करता था। अभिनय-कला में दक्ष होने के अलावा उसकी एक विशेषता यह भी थी कि वह अपनी आवाज़ को ऊंची-नीची और तीखी-भारी जैसी भी चाहे इच्छा के अनुसार झट बदल लेता था।

दिल्ली के नाटकों में प्रसिद्धि का क्षेत्र सीमित था। इसलिए सुरेश की यह बड़ी कामना थी कि वह, बम्बई जाकर फिल्मों में काम करे और प्रसिद्धि के क्षेत्र को बढ़ाए। अमिता ने यह प्रस्ताव रखा तो यों समझो कि बिल्ली के *भागों छिक्का टूटा। सुरेश को यह भी उम्मीद थी कि अमिता की बदौलत उसे किसी न किसी फिल्म में जल्द* काम मिल जाएगा।

और वह उसके साथ बम्बई चला गया।

बम्बई में अमिता की जान-पहचान के काफी लोग थे, जो पंद्रह-पंद्रह, बीस-बीस साल से फिल्म इंडस्ट्री में काम *कर रहे थे।* इसलिए *उनका वहां खूब स्वागत हुआ।* पार्टियों में जाना, स्टुडियो मे शूटिंग देखना, फिल्म प्रोड्यू-सरों तथा एक्टर-एक्ट्रेसों से मुलाकातें करना—बम्बई की जिन्दगी दिल्ली की जिन्दगी से सर्वथा भिन्न थी। भारत के इस हॉलीवुड में दिलचस्पी की इतनी बातें थीं कि दिन *क्षणों की तरह गुज़रते रहे।*

चहल-पहल और मनोरंजन के अलावा काम की बातें भी हुईं। यार लोगों ने काम दिलाने के वायदे भी किए। अमिता और सुरेश ने उन वादों पर विश्वास भी किया, क्योंकि वादे करनेवाले सच्चे सहृदय व्यक्ति जान पड़ते थे। लेकिन विस्वास ही विश्वास में छ: महीने गुज़र गए, लेकिन न फिल्म के लिए कहानी या गीत लिखने की अमिता की साध पूरी हुई और न सुरेश को कहीं कोई

इसलिए दोनों परेशान थे। परेशानी की बड़ी वजह यह थी कि यार लोगों की आंखें भी अव वैसी नहीं रही थीं। उनकी वातों और मुस्कराहटों में विद्रूप का कांटा छिपा रहता था जो रह-रहकर यह एहसास दिलाता था कि ये लोग वनावटी सहृदयता का मुखौट लगाने में दिल्ली के लोगों से अधिक कुशल हैं।

उधर से निराश होने का परिणाम यह हुआ कि उनका अपना सम्वन्ध भी पहले शिथिल पड़ा, शिथिल से नीरस हुआ और फिर एकदम वोझल मालूम होने लगा। दोनों एक-दूसरे से चिढ़े रहते थे और निराशा की इस स्थिति में ला पटकने के लिए एक-दूसरे को ज़िम्मेदार समझते थे। अतएव मन की भड़ास निकालने का कोई न कोई वहाना ढूंढ़ते और वात-वात पर व्यंग्य-प्रहार करते रहते थे।

'अखवार में वह खवर पढ़ी?' सुवह नाश्ता करते समय सुरेश ने अमिता से पूछा।

'कौन-सी?'

'दिल्ली यूनिवर्सिटी के एक डीमोंस्ट्रेटर कैलाश ने पोटाशियम साईनाड का इंजेक्शन लगाने का प्रयोग किया और मर गया।'

अमिता को गोपाल की और उसके खत की याद आई। चार-पांच साल पहले सुना था कि वह अनुसंधान-कार्य के सिलसिले में जर्मनी चला गया है! उसके वाद वह देश लौट आया या अव तक वहीं था, यह कुछ पता नहीं चला।

'दरअसल बात यह थी।' सुरेश फिर बोला, 'कि उसे अपने साथ काम करनेवाली मिस विमला नाम की एक महिला से प्रेम था। प्रेम में सफल न होने के कारण उसने यह आत्महत्या की है। प्रयोगशाला की मेज़ पर इस विषय का ख़त भी मिला है और क्रियाकर्म के लिए ६५ रुपये ६ आने के पैसे भी मिले है।'

'आत्महत्या अगर कोई हल हो तो मैं न कर लेती।' अमिता ने कहा और बीते दिनों को याद करके एक नि:श्वास छोड़ी।

सुरेश की दोनों कोहनियां मेज पर थी और दाएं हाथ की अंगुलियां बाएं हाथ की अंगुलियों में फंसाकर उनपर ठोडी रखी हुई थी। वह अमिता की बात सुनकर इसी स्थिति में निश्चल बैठा रहा और उसके चेहरे के बदलते हुए भाव को देखता रहा।

'बेहतर है कि तुम आत्महत्या कर लो और···'

सुरेश कहते-कहते रुक गया और उसने प्याला उठाकर चाय का एक घूट भरा।

'और कहो न कि मेरा पीछा छोड़ो। कहते-कहते रुक क्यों गए?' अमिता चिढ़कर बोली।

'मैं जो कहना चाहता था अच्छा है कि मुझे नहीं कहना पड़ा और तुमने आप ही कह लिया।' सुरेश ने कहा और हंस पड़ा।

* हिन्द पॉकेट बुक्स सभी अच्छे पुस्तक-विक्रेताओं, समाचारपत्र-विक्रेताओं, रेलवे बुक-स्टालों तथा रोडवेज़ बुक-स्टालों से मिल सकती हैं।

* देश-विदेश के प्रसिद्ध लेखकों की पुस्तकें—उपन्यास, कहानी, कविता, नाटक, उर्दू शायरी, ज्ञान-विज्ञान, हास्य-व्यंग्य, स्वास्थ्य, स्त्रियोपयोगी एवं जीवनोपयोगी साहित्य हिन्द पॉकेट बुक्स में प्रकाशित किया जाता है। हिन्द पुस्तकें उच्चकोटि के लेखकों, आकर्षक गेटअप, सुन्दर छपाई, सस्ते दाम के लिए भारत-भर में प्रसिद्ध हैं। प्रत्येक पुस्तक का मूल्य केवल एक रुपया है। केवल कुछ पुस्तकों का मूल्य दो रुपये प्रति है, परन्तु उनकी पृष्ठ-संख्या २५० से भी ऊपर है।

* यदि आपको हिन्द पॉकेट बुक्स प्राप्त करने में किसी प्रकार की कठिनाई हो तो हमें लिखें। पांच पुस्तकें एकसाथ मंगाने पर डाक-व्यय फ्री की सुविधा भी दी जाती है। यदि आप चाहते हैं कि आपको हिन्द पॉकेट बुक्स की सूचना निरन्तर मिलती रहे, तो अपना नाम, व्यवसाय और पूरा पता कार्ड पर लिखकर हमें भेज दें। हम आपको नये प्रकाशनों की सूचना देते रहेंगे।